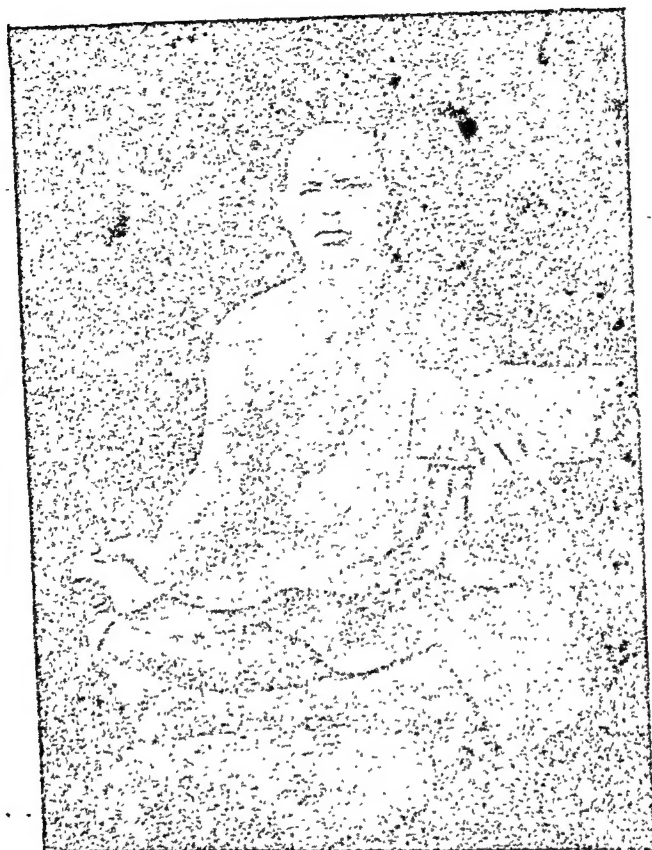
"जैनाचार्य न्यायांभोनिधि श्रीमद्विजयानंदसूरि—
(आत्मारामजी) महाराज"

जन्म संवत् १८९३



स्वर्गवास संवत् १९५३

"No man has so peculiarly identified himself with the interests of the Jain Community as Muni Atmaramji. He is one of the noble band sworn from the day of initiation to the end of life to work day and night for the high mission they have undertaken. He is the high priest of the Jain Community and is recognised as the highest living authority on Jain Religion and literature by Oriental Scholars."

(The worlds Parliament of Religions Chikago in America Page 21).

कुमारपालचरित्र



श्रीमद्वल्लभविजयजी शिष्यमुनि श्रीललितविजयजी.

स्वर्गस्थ बाबु चूनीलालजी पन्नालालजी की
आर्थिक सहायतासें

प्रसिद्ध कर्त्ता,
श्रीआत्मानंदजैनसभा भावनगर (काठियावाड)

दूसरी दफा प्रत १०००
वीरसंवत् २४४२-वि० सं० १९७३ आत्मसं०
सने १९१६

मुंबई, निर्णयसागर प्रेस.

Printed by Ramchandra Yesu Shedge, at the Nirnaya-sagar Press, 23, Kolbhat lane, Bombay, and Published by Vallabhadas Tribhuvandas Gandhi, Shri Atmananda Jain Sabha, Bhavanagar, Kathiawar.



पाटणनिवासी स्वर्गस्थ बाबु चुनीलालजी पन्नालालजी.

जन्म-कलकत्ता, संवत् १९०५.

मृत्यु-मुंबई, संवत् १९५९.

अनुक्रमणिका.



अर्हम्।

प्रस्तावना।

सन्त्यन्ये कविताविताननरसिकास्ते भूरयः सूरयः
क्ष्मापस्तु प्रतिबोद्धते यदि परं श्रीहेमसूरेर्गिरा।
उन्मीलन्ति महामहांस्यपि परे लक्षाणि रूक्षाणि खे,
नो राकाशशिनीं विना बत भवत्युज्जागरः सागरः॥

स्वर्गे न क्षितिमण्डले न वडवावक्त्रे न लेभे स्थितिं,
त्रैलोक्यैकहितप्रदाऽपि विधुरा दीना दया या चिरम्।
चौलुक्येन कुमारपालविभुना प्रत्यक्षमावासिता,
निर्भीका निजमानसौकसि वरे, केनोपमीयेत सः॥

अखिलविद्यापारंगत, सकलशास्त्रनिष्णात, सर्वतंत्रस्वतंत्र, कलिकाल—सर्वज्ञ भगवान् श्रीहेमचंद्र सूरीश्वर; तथा उन के परमभक्त, परमार्हत, धर्मात्मा, अति दयालु, चौलुक्य चूडामणि, गुर्जरधराधि-

पति, राजर्षि श्रीकुमारपाल देव के भव्यजन मनोरंजन, लोकोत्तर, पवित्र जीवन–चरित्र के विषय में, पूर्वकाल के अनेक जैन विद्वानोंने विविध ग्रंथ लिखे हैं; इन महा-पुरुषों के अगण्य गुणगण का मुक्त कण्ठ से भक्तिभरित गानकर स्वनाम को कृतार्थ किया है। भावी जनप्रजा को, भक्ति का मार्ग दिखला कर, आत्मिक शक्ति के अभ्युदय करने में अत्यंत अवलंबन दिया है। हमारे सुनने और देखने में आजतक जितने ग्रंथ आये हैं, उन के नामादि पाठकों के जानने के लिए यहाँ लिखे जाते हैं—

१—कुमारपाल–प्रतिबोध, सोमप्रभाचार्यकृत।

इस का दूसरा नाम जिनधर्म–प्रतिबोध–हेमकुमारच-रित्र–भी है। इस के कर्ता श्रीसोमप्रभा[चार्य] वडे भारी विद्वान् थे। इन्हों ने एक काव्य लिखा है जिस के सौ

---

१ विद्वानोंके अवलोकनार्थ वह काव्य हम यहां उद्धृत करते हैं—

कल्याणसारसवितानहरेक्षमोह–, कांतारवारणसमानजयाद्यदेव।
धर्मार्थकामदमहोदयवीर–, सोमप्रभावपरमागमसिद्धसूरे॥

इस काव्यके ऊपर स्वोपज्ञ व्याख्या है जिसमें पृथक् पृथक् १०० रीति से व्याख्यान लिखे हैं।

तरह से अर्थ किए हैं। इस निमित्त इन्हें 'शतार्थी' की बहुविद्वत्तासूचक उपाधि मिली थी। इन की कवित्व शक्ति बहुत अच्छी थी। जिन्हों ने इन की बनाई हुई 'सूक्तिमुक्तावली'—जिस का अपर नाम सिंदूर प्रकर है—का पाठ किया है वे इस बात को अच्छीतरह जानते हैं। ये संस्कृत के समान प्राकृत भाषा के भी पूरे पारंगत थे। महाराज कुमारपाल देव के राज्यत्व काल में 'सुमतिनाथचरित्र' नामक एक बहुत बडा ग्रंथ प्राकृत में लिखा है। इस 'कुमारपाल चरित्र' में भी बहुत भाग प्राकृत का ही है। विक्रम संवत् १२४१ में इस ग्रंथ की समाप्ति हुई है। अर्थात् महाराज कुमारपाल की मृत्यु से ११ वर्ष बाद यह ग्रंथ लिखा गया है। ग्रंथ बहुत बडा है। श्लोकसंख्या कोई इस की ९००० के लगभग होगी।

२—मोहपराजयनाटक, यशःपालमंत्रीकृत।

सुप्रसिद्ध युरोपीय पंडित पीटरसन (Prof. Peterson.)

---

१ देखो निर्णयसागर प्रेस, बंबई, का छपा हुआ 'काव्यमाला सप्तम गुच्छक'

पति, राजर्षि श्रीकुमारपाल देव के भव्यजन मनोरंजन, लोकोत्तर, पवित्र जीवन-चरित्र के विषय में, पूर्वकाल के अनेक जैन विद्वानोंने विविध ग्रंथ लिखे हैं; इन महा-पुरुषों के अगण्य गुणगण का मुक्त कण्ठ से भक्तिभरित गानकर स्वनाम को कृतार्थ किया है। भावी जनप्रजा को, भक्ति का मार्ग दिखला कर, आत्मिक शक्ति के अभ्युदय करने में अत्यंत अवलंबन दिया है। हमारे सुनने और देखने में आजतक जितने ग्रंथ आये हैं, उन के नामादि पाठकों के जानने के लिए यहाँ लिखे जाते हैं—

१—कुमारपाल-प्रतिबोध, सोमप्रभाचार्यकृत।

इस का दूसरा नाम जिनधर्म-प्रतिबोध-हेमकुमारच-रित्र-भी है। इस के कर्ता श्रीसोमप्रभाचार्य बडे भारी विद्वान् थे। इन्हों ने एक काव्य लिखा है जिस के सौ

---

१ विद्वानोंके अवलोकनार्थ वह काव्य हम यहां उद्धृत करते हैं—

कल्याणसारसवितानहरेक्षमोह-, कांतारवारणसमानजयाद्यदेव।
धर्मार्थकामदमहोदयवीर-, सोमप्रभावपरमागमसिद्धसूरे॥

इस काव्यके ऊपर स्वोपज्ञ व्याख्या है जिसमें पृथक् पृथक् १०० रीति से व्याख्यान लिखे हैं।

तरह् से अर्थ किए हैं। इस निमित्त इन्हें 'शतार्थी' की वहुविद्वत्तासूचक उपाधि मिली थी। इन की कवित्व शक्ति वहुत अच्छी थी। जिन्हों ने इन की वनाई हुई 'सूक्तिमुक्तावली'—जिस का अपर नाम सिंदूर प्रकर है—का पाठ किया है वे इस वात को अच्छीतरह् जानते हैं। ये संस्कृत के समान प्राकृत भाषा के भी पूरे पारंगत थे। महाराज कुमारपाल देव के राज्यत्व काल में 'सुमतिनाथचरित्र' नामक एक वहुत वडा ग्रंथ प्राकृत में लिखा है। इस 'कुमारपाल चरित्र' में भी वहुत भाग प्राकृत का ही है। विक्रम संवत् १२४१ में इस ग्रंथ की समाप्ति हुई है। अर्थात् महाराज कुमारपाल की मृत्यु से ११ वर्ष वाद यह ग्रंथ लिखा गया है। ग्रंथ वहुत वडा है। श्लोकसंख्या कोई इस की ९००० के लगभग होगी।

२—मोहपराजयनाटक, यशःपालमंत्रीकृत।

सुप्रसिद्ध युरोपीय पंडित पीटरसन (Prof. Peterson.)

---

१ देखो निर्णयसागर प्रेस, वंवई, का छपा हुआ 'काव्यमाला सप्तम गुच्छक'

ने, पूनेकी डॅक्कन कॉलेज (Deccan College) के वि-
द्यार्थीओं के सन्मुख श्रीहेमचंद्राचार्य के विषय में एक
व्याख्यान दिया था। उस में, इस ग्रंथ के विषय में बो-
लते हुए उन्हों ने विद्यार्थीओं से कहा था कि—"इस
तुह्मारी कॉलेज के, उस अगले दिवान खाने के ही 'पु-
स्तक–संग्रह' में एक पुस्तक पडी है। जिस में यह वृत्तांत
लिखा हुआ है कि, कुमारपाल राजा ने किस वर्ष के
किस महीने और किस दिन को जैन धर्म स्वीकार
किया। क्रिश्चीयन लोकों के 'पीलग्रीम्स प्रोग्रेस' नामक
पुस्तक की तरह, अलंकार रूप से, कुमारपाल राजा के
जैनधर्म में दीक्षित होने का वर्णन किया गया है। यह
पुस्तक नाटकके रूपमें ताडपत्रपर लिखी हुई है, और
'मोहपराजय' इस का नाम है। हेमचंद्राचार्य से संबंध
रखने वाले इतिहास ऊपर, प्रकाश डालने वाली पुस्तकों
में से, यह पुस्तक सब से प्राचीन है। इस पुस्तक के
कर्ताका नाम यशःपाल है। कुमारपाल राजा की मृत्यु
के वाद, उस के राज्य का स्वामी जो अजयपाल हुआ

था उस का यह प्रधान था। इस 'मोहपराजय' नाटकमें, कुमारपाल राजा के साथ, धर्मराज और विरतिदेवी की पुत्री कृपासुन्दरी का पाणिग्रहण, तीर्थंकर महावीर और आचार्य हेमचंद्र की सन्मुख, कराया गया है। जैन धर्म की इस बडी भारी विजय की मिति संवत् १२१६ के मार्गशीर्ष मास की शुक्ल द्वितीया है। अर्थात् ईस्वीसन् ११६० में कुमारपाल राजा ने प्रगटरूप से जैनधर्म का स्वीकार किया था। इस तारीख के निश्चय में संशयित होने का कोई भी कारण नहीं है, क्यों कि यह पुस्तक ईस्वीसन् ११७३ से ११७६ के बीच में—अर्थात् इस उपरोक्त तारीख के बाद १६ वर्ष के अंदर ही—लिखी हुई होनी चाहिए।"

३—प्रबंध-चिंतामणि, मेरुतुंगाचार्यकृत। यह ग्रंथ बहुत अच्छा है। संकृत भाषामें, गद्यमें, इस की रचना की गई है। इस में अनेक ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख है। राजतरंगिणी के ढंग पर लिखा हुआ है। आधुनिक पाश्चात्य विद्वानों ने इस ग्रंथ को अन्य सब

ऐतिहासिक लेखों से, अधिक विश्वसनीय माना हैं। गुजरात के इतिहास के लिए तो केवल यही एक आधारभूत ग्रंथ है। इस का इंग्रेजी में अनुवाद करा कर, बंगाल की 'रॉयल एशियाटिक सोसाईटी' ने प्रगट किया है। इस के अंत में कुमारपाल व हेमचंद्राचार्य का विस्तृत वर्णन है। संवत् १३६१ के फाल्गुन मास की शुक्ल पूर्णिमा को, काठीयावाड के प्रसिद्ध नगर 'वढवाण' में इस की समाप्ति हुई थी।

४—प्रभावक-चरित्र, प्रभाचंद्राचार्यकृत। इस ग्रंथ में, जगत् में जैनधर्म की प्रभावना करने वाले अनेक प्रभावक पूर्वर्षियों के जीवन चरित्र है। सारा संस्कृत-पद्यमय है। कविता बडी रमणीय है संस्कृत-साहित्य-प्रेमीयों को अवश्य अवलोकन करने लायक है इस में पूर्वकाल के २३ जैन महात्माओं का वर्णन है। अंत में हेमचंद्राचार्य का भी विस्तार से उल्लेख है।

५—कुमारपालचरित्र, जयसिंह सूरिरचित।

६—कुमारपालचरित, श्रीसोमतिलकसूरिकृत।

७—कुमारपालचरित्र, श्रीचारित्रसुंदरकृत ।

८—कुमारपालचरित्र, हरिश्चंद्रकृत (प्राकृत)।

९—चतुर्विंशतिप्रबंध, श्रीराजशेखरसूरिकृत ।

१०—कुमारपालरास (गुजराती) श्रीजिनहर्षकृत।

११—कुमारपालरास (गुजराती) श्रावक ऋषभदासरचित ।

इन पुस्तकों के अतिरिक्त 'विविधतीर्थकल्प' 'उपदेशतरंगिणी' तथा 'उपदेशप्रासाद' आदि बहुतसे अन्य ग्रंथों में भी इन महापुरुषोंका वर्णन मिलता है ।

इस ग्रंथ-गणना में हमें अभी एक और महत्त्ववाले ग्रंथ का नाम लिखना बाकी है—जो कि इस प्रस्तुत चरित्र का मूल भूत है। इस का नाम है 'कुमारपालप्रबंध' संवत् १४९९ में, तपगच्छाचार्य महाप्रभावक श्रीसोमसुंदरसूरीश्वरजी के सुशिष्य **श्रीजिनमंडनगणि** ने इस की रचना की है। सारा ग्रंथ सरल और सरस संस्कृतमय है। गद्य और पद्य से मिश्रित है। बीच बीच में प्राकृत–पद्य भी प्रसंगवश उद्धृत किए गए हैं। इस ग्रंथ

का चरित्रात्मक भाग, केवल कवि की कल्पना मात्र है, ऐसा नहीं है; परंतु यथार्थ ऐतिहासिक घटना स्वरूप है। इस का प्रमाण पाठकों को इस से मिल सकेगा कि, इस चरित्रको विश्वसनीय और उपयोगी समझकर वडौदे के विद्याविलासी नृपति श्रीसयाजीराव महाराज ने, पारितोषिक दे कर, विद्वान् श्रावक श्रीयुत मगनलाल चूनिलाल वैद्य (वडौदे) द्वारा, गुजराती भाषा में अनुवाद कराकर, राज्य की तर्फ से छपवा कर प्रकाशित किया है। इस पुस्तक में गुजरात के इतिहास की वहुत सी उपयोगी वाते हैं। अणहिलपुर-पाटन नगर की स्थापना (विक्रम संवत् ८०२) से ले कर कुमारपाल राजा (सं. १२३०) पर्यंत की गुर्जरराज्यप्रवृत्ति विगेरे इस में संक्षिप्त से वर्णन की गई है। सिद्धराज-जयसिंह का, वंगाल के महोबकपुर(महोत्सवपुर) के राजा मदनवर्मा के साथ, समागम होने का उल्लेख इसी ग्रंथ में मिलता है, जो वात, जनरल कनिंगहाम (General Cunningham) के 'हिंदुस्थान का प्राचीन भूगोल' (Archeological Re-

ports.) वाली हकीकत को पुष्ट करती है। जुदा जुदा देशों को जीतना, विद्याकला-कौशल्य आदि का देश में प्रचार करना, नीति और धर्ममय जीवन बिताने के लिए प्रजा को अनेक तरह से प्रवृत्त करना, हिंसा, व्यसन आदि अधःपात कराने वाले अकृत्यों का सर्वथा नाश करना और सोमेश्वर शत्रुंजयादि विविध तीर्थों का जीर्णोद्धार व अनेक नवीन मंदिरों का बनवाना इत्यादि विविध विषयों का मनोहर विवेचन इस पुस्तक में किया गया है। अधिक क्या? उस समय की राजकीय, धार्मिक और सामाजिक स्थिति का एक उत्तम चित्ररूप यह प्रबंध है। इसी ही 'कुमारपालप्रबंध' के ऊपरसे लेखक ने, संक्षेपमें, यह 'कुमारपालचरित' विशेपकर राजपूताना और पंजाबादि देशवासी जैनी भाईयों के हितार्थ हिंदी में लिखा है।

गुजरात में विद्या और शिक्षा का प्रचार अधिक होने से तथा साधुओं की स्थिति भी इस देश में अधिकतया रहने से संस्कृत प्राकृत भाषा में से सैंकडो ग्रंथों का,

और राजर्षि के आदर्श जीवनका एक क्षण भी ऐसा नहीं है कि जिसका जानना अनुपयुक्त हों, परंतु पूर्व-कालीन भारतीयों का, आधुनिकों की तरह इतिहास तत्त्व की तरफ विशेष लक्ष्य न होने से, इन महात्माओं के समग्र जीवनचरित्ररूप अमृत का पान कर, हम अपने आत्मा को संतुष्ट नहीं कर सकते। इस प्रबंध में जिन बातों का उल्लेख है, वह केवल खास खास विशेष घटनाओं का ही समझना चाहिए।

यहां पर हम यदि, पाठकों के सुबोधार्थ इन महा-पुरुषों के पवित्र चरित्रका कुछ सारांश लिखा देवें तो, संभव है विशेष उपयुक्त होगा।

महर्षि श्रीहेमचंद्राचार्य ।

स्तुमस्त्रिसंध्यं प्रभुहेमसूरेरनन्यतुल्यामुपदेशशक्तिम् ।
अतीन्द्रियज्ञानविवर्जितोऽपि यः क्षोणिभर्तुर्व्यधित प्रबोधम् ॥

श्रीसोमप्रभाचार्य ।



विक्रम संवत् ११४५ की कार्तिकी पूर्णिमा को, सकलसत्वसमूह को अद्वितीय आह्लाद उत्पन्न करने वाला, सांसारिक विषयों के आंतरिक दाह से संतप्त आत्माओं को शांति पहुंचाने वाला, सम्यग्ज्ञान दर्शन और चारित्र रूप अलौकिक रत्नों को अपने गर्भ में रखने वाले पवित्र जैनधर्मरूप महासागर की, आनंदोत्पादक भगवती अहिंसास्वरूपिणी ऊर्मियों को अखिल भूमंडल में फैलानेवाला, भव्यजनरूप कमनीय कुमुदों को विकस्वर करने वाला और अपनी अपूर्व ज्ञानज्योत्स्ना द्वारा, अज्ञानांधकार से

आच्छन्न भारत धरा को उज्ज्वल करने वाला, तथा जिस का प्रकाश शाश्वत रहने वाला है ऐसे लोकोत्तर चंद्रके समान, इस महामुनींद्र हेमचंद्रका, प्राचीदिक् सदृश पूजनीय देवी पाहिनी के पवित्र गर्भसे अवतार हुआ था। 'जगत् में, जब जब धर्म की कोई विशेष हानि होने लगती है तब तब, उसकी रक्षा करने ये लिए अवश्य ही किसी महाज्योति–युगप्रधानका अवतार होता है' इस प्राकृतिक नियमानुसार, जब जैनधर्म में विशेष क्षीणता पहुंचने लगी, परस्पर सांप्रदायिक झगडों की जड जमने लगी, विपक्षियों की ओर से अनेक प्रकार के प्रहार पडने लगे और जैनों का आत्मसंयम शिथिल होने लगा, तब, समाज कोई न कोई ऐसी व्यक्ति की अपेक्षा कर रही थी कि जो अपने सामर्थ्य द्वारा, जैन-धर्मपर घिरा हुआ, इस विपत्ति रूप बादल का संहार करे। समाज के इस मनोरथ को भगवान् हेमचंद्र ने पूर्ण किया। इस प्रचंड गति वाले महान् वायु के सामर्थ्य से वह मेघाडंबर उड गया।

दीक्षा।

चंद्रगच्छ के मुकुट स्वरूप श्रीदेवचंद्रसूरि ने अपने ज्ञान बलसे, इस व्यक्तिद्वारा जैनधर्म का महान् उदय होने वाला, जानकर, नव वर्षवाले इस छोटे से बच्चे को ही, संवत् ११५४ में चारित्र रूप अमूल्य रत्न सोंप दिया! पाठकों को यह पढकर आश्चर्य होगा कि इतना छोटा बच्चा साधुपने की ज़िम्मेदारियों को क्या समझता होगा और साधु–जीवन की कठिनाईयों को कैसे सहन कर सकता होगा? तथा बहुतसे अज्ञान मनुष्य इस बातपर उपहास्य ही करेंगे। परंतु यह एक उन की अज्ञान जन्य भूल ही समझना चाहिए। महापुरुषों का चरित्र लौकिक न होकर लोकोत्तर होता है; यह अवश्य ध्यान में रखना चाहिए। चाहे, वे वय और शरीर से भले ही छोटे हों, परंतु सामर्थ्य उनका बहुत बडा होता है। वे अपने समकालीन लाखों मनुष्यों जितनी शक्ति, अकेले ही धारण करे रहते हैं। जगत् में उन की पूजा अपूर्व गुणों के कारण ही होती है; वय या शरीर के निमित्त

से नहीं। गुणाः पूजास्थानं गुणिपु न च लिङ्गं न च वयः। यदि जगत् का इतिहास ध्यान से देखा जाय तो इस बात के प्रमाणभूत वहुत से उदाहरण मिलेंगे। भारतवर्ष में अनेक ऐसे महापुरुप हो गये हैं, जिन्होंने, साधारण जनसमाज की चर्मचक्षुमें दीख पडनेवाली बाल्यावस्थामें ही, अपूर्व कार्य किए हैं। श्रीशंकराचार्य तथा महाराष्ट्रीय भक्तशिरोमणि ज्ञानदेव जैसे समर्थ पुरुषों ने, १५–१६ वर्प जैसी अल्प वय में ही, गहन-तत्वपूर्ण भाष्य लिख डाले थे, कि जिन को समझने के लिए भी साधारण मनुष्यों की तो आयु ही खतम हो जाती है। जैनाचार्य श्रीअभयदेवसूरि, सोमसुंदरसूरि आदि अनेक पुरुषों ने बाल्यावस्था में ही वडे वडे प्रतिष्ठित आचार्यादि पद प्राप्त किये थे। प्रो. पीटरसन, इस अल्पवय में दीक्षा देने वाली बात ऊपर लिखते हैं कि—"देवचंद्रने इस छोटे से वच्चे को दीक्षा दे कर अपना शिष्य बना लिया; यह आश्चर्य जैसा मालूम देगा, परंतु इस में आश्चर्य होने का कोई कारण नहीं है। इस प्र-

कारकी प्रथा, इस देश (भारतवर्ष) में तथा अन्य देशों में, प्राचीन काल से चली आ रही है, और चल रही है।...........पुख्त उम्र वाले को ही साधु बनाना चाहिए; यह नियम है अच्छा, परंतु अन्य सभी धर्मों में देखा जायगा तो इस तरह अल्पवय वाले ही, बहुत से नवीन आचार्य पसंत किए गए मालूम देंगे।"

विद्याभ्यास।

पूर्व जन्मके सुसंस्कार और क्षयोपशम की प्रबलता के कारण थोडे समयमें ही, हेमचंद्र मुनि ने सर्व शास्त्रों का अध्ययन कर, पांडित्य प्राप्त कर लिया। स्मरण-शक्ति और धारणा-शक्ति बहुत तीव्र होनेसे अल्प परिश्रम से ही अपार ज्ञान संपादन कर लिया। विद्याभिरुचि अत्यंत तीव्र होने के कारण भगवती सरस्वती देवी प्रसन्न होकर, स्वयं वर प्रदान करने के लिए आई थी!

जितेन्द्रियता।

आप का आत्मसंयमन और इंद्रियदमन अत्यंत

उत्कट था। इतनी अल्प वय में इस प्रकार की वैराग्य वृत्ति का अस्तित्व होना, अत्यंत आश्चर्यकारक है। संसार भर में, सब से कठिन पाल्य नियम ब्रह्मचर्य है। जिनका वर्णन सुनकर रोमांच खडे हो आते हैं, ऐसे घोर तपों को, असंख्य वर्षों तक तपने वाले वडे वडे योगी भी, इस दुष्कर नियम की कठोर परीक्षा में, अनुत्तीर्ण हो गए हैं। उसी ब्रह्मचर्य को, पूर्णरूप से, हेमचंद्र मुनि ने किस तरह धारण किया था, यह इस चरित्रांतर्गत पद्मिनी (पृष्ठ २५.) वाले वृत्तांत के पढने से, अच्छी तरह ज्ञात हो जाता है। धन्य है, इस महापुरुषकी सत्त्वशीलताको ! पूर्ण ब्रह्मवृत्ति को ! निर्विकार दृष्टि को ! और उत्कृष्ट योगिता को ! अहो ! कितनी जितेन्द्रियता ? कैसी मनोगुप्ति ? कितना वडा दृढसंकल्प वल ? सच्च है इस प्रकारकी सच्चरितताके विना अद्भुत विद्यायें कव प्राप्त हो सकती हैं ? और जगत्का भला भी कहां से हो सकता है ? इस महात्माके ब्रह्म तेज से कोयलों का ढेर भी सुवर्णमय हो जाता था ! (पृष्ठ २३.)

आचार्यपद ।

इस प्रकार हेमचंद्र मुनि के ज्ञानवल और चारित्रवल की उत्कृष्टता का प्रवाह श्रीसंघ में सर्वत्र प्रसर गया । 'अव जैनधर्म की विजयपताका थोडे ही समय में सारे भूमंडल में उडने लगेगी–' इस प्रकार संघ में आनंदवार्ता प्रवर्तने लगी। संघ के आग्रहसे तथा शासन की महिमा वढाने के लिए, गच्छाधिपति श्रीदेवचंद्रसूरि ने, नागपुर नगर में, संवत् ११६२ के साल में हेमचंद्रमुनि को आचार्यपद पर अभिषिक्त किया ।

शासनोद्धार करनेकी प्रतिज्ञा ।

जव आप को आचार्यपद प्राप्त हुआ और जैनधर्म की धुरा कंधे पर रखी गई, तव शासन की स्थिति देख कर आप के मन में अनेक प्रकार के विचार उत्पन्न होने लगे । जैनधर्म का उद्धार और प्रचार जगत् में किस तरह हो; यह वात दिन और रात मन में घूमने लगी। हर एक उपाय से भी परमात्मा के शासन की वैजयन्ती

पताका को, एक दफे फिर भी, भारतवर्ष में फरकानी चाहिए, ऐसा पूर्ण उत्साह के साथ दृढ संकल्प किया। जबतक, कोई राजा महाराजा इस धर्मका नायक न हो, तबतक यह संकल्प सिद्ध होना मुश्किल है; ऐसा विचार कर, किसी महाराज को प्रतिबोध करने के लिए, मंत्राराधन कर, देवसे वर माँगा। आपके प्रबल मनोबल से, संतुष्ट हो कर देव ने ईप्सित वरप्रदान किया।

गुर्जरपति सिद्धराजका समागम।

विविध देशों में विहार करते हुए, और उपदेशामृत-द्वारा अनेक भव्य जीवोंको प्रतिबोध करते हुए, क्रमसे गुर्जर राज्यनगर अणहिलपुर—पाटन में प्रवेश किया। इस समय महाराज सिद्धराज जयसिंह यहांपर प्रजाप्रिय नृपति थे। धीरे धीरे सारे शहरमें तथा राजदरबारमें आप की विद्वत्ताकी ख्याती होने लगी। जिसे सुन कर महाराज भी आपके दर्शन के लिए उत्कंठित हुए। प्रसंग वश एक दिन आपका और महाराजका समागम

हुआ। राजा आप की विद्वत्ता और सच्चरितता पर बडा मुग्ध हुआ। 'आप कृपाकर, निरंतर यहाँ आया करें और धर्मोपदेशद्वारा हमें सन्मार्ग बताया करें' इस प्रकारकी राजा की विज्ञप्ति, धर्म की प्रभावना के खातर, स्वीकार कर ली। राजा की इच्छानुसार, आप का आगमन निरंतर राज्य सभा में होता था। नाना प्रकारकी तत्त्वचर्चा हुए करती थी। देश देशांतरों से अनेक मतों के विद्वान् अपनी विद्वत्ता का परिचय देने के लिए सिद्धराज की सभा में उपस्थित होते थे। सब के साथ हेमचंद्राचार्य का वाद विवाद होता था और उसमें सदा आप ही का जय होता था।

जैनधर्म में अटल श्रद्धा।

आपका आत्मा जैनधर्म में पूर्ण रंगा हुआ था। आर्हत धर्म ऊपर आपकी अटल श्रद्धा थी। यदि, जैन-धर्म की जय ध्वनि को सर्वत्र फैलाने के लिए, जो, रसातल में भी जाना पडे, तो, आप वहां जाने के लिए

भी तैयार थे। इस प्रकारका जैनधर्म ऊपर जो आपका विश्वास था वह धार्मिक–मोह जन्य नहीं था, किंतु जैनधर्म की सत्यता के कारण था। आप एक स्तुति में वीतराग महावीर प्रभु की स्तवना करते हुए कहते हैं की

'न श्रद्धयैव त्वयि पक्षपातो न द्वेषमत्रादरुचिः परेषु।
यथावदाप्तत्व परीक्षयाच्च त्वामेव वीर! प्रभुमाश्रितास्म॥'

अर्थात्–हे वीर! केवल श्रद्धा–अंध श्रद्धा–से ही तेरे में हमारा पक्षपात है तथा केवल द्वेषमात्रा से ही अन्यों में हमारा अनादर है, ऐसा नहीं; किंतु परीक्षापूर्वक, हमारा यह व्यवहार है। जैनधर्म के सिद्धान्तों को आप अखंडनीय समझते थे, और अपने ज्ञानवलसे उनकी अखंडनीयता, समस्त प्रवादीयों के सामने, अकाट्य प्रमाणों द्वारा वडी निर्भीकता के साथ सिद्ध करते थे। इसी ही स्तुति में आप अन्यत्र लिखते हैं कि—

'इमां समक्षं प्रतिपक्षसाक्षिणा-मुदारघोषामवघोषणां ब्रुवे।
न वीतरागात्परमस्ति दैवतं, न चाप्यनेकांतमृते नयस्थितिः'

अर्थात्–प्रतिपक्षीयों के सन्मुख वडी गर्जना करके कहता

हूं कि, जगत् में वीतराग के सदृश तो कोई अन्य देव नहीं है और अनेकांत (स्याद्वाद–जैन) धर्म के सिवाय कोई तत्त्व नहीं है।

निष्पक्षपातता।

हम ऊपर कह आये हैं कि, आपकी जो धार्मिक श्रद्धा थी वह पक्षपात पूर्ण न हो कर, तात्त्विकी थी। इस का प्रमाण, सिद्धराज ने जब आपको यह पूछा था कि, 'जगत् में कौनसा धर्म संसार से मुक्त करनेवाला है?' इस के उत्तर में आपने जो पुराणान्तर्गत संखाख्यान का (पृष्ठ २९.) अधिकार सुनाया है, और धर्म गवेषणाके लिए जो निष्पक्षपात भाव प्रकट किया है, वह आपके जीवन के निष्कर्ष का एक असाधारण उदाहरण है। इस प्रसंग ने आपके जीवन को अत्यंत पवित्र सिद्ध करदिया है। यदि आप, उस समय, इस प्रकारका मध्यस्थतासूचक जवाब न दे कर, जिस धर्म के ऊपर आपका पूर्ण विश्वास था, उसी का नाम लेते, तो आपको कौन रोकनेवाला था? ऐसा जगत् में कौन

था जो आपके कथन को खंडित कर सक्ता ? किन्तु आप यह अच्छी तरह जानते थे कि जो भव्य और निष्पक्ष-पाती धर्मेच्छु होगा उसको तो, गवेषणा करने पर, निस्संदेह एक जैनधर्म ही सत्य—धर्म प्रतीत होगा। क्यों कि आप ने भी स्वयं जैनधर्म को सत्यता के कारण ही स्वीकार किया था। प्रो. पीटरसन इस विषय में लिखते हैं कि—"सिद्धराज को धर्मसंबंधी जो शंकायें होती थी, उन को, अन्य आचार्यों की माफक, जैनाचार्य हेमचंद्र को भी, पूछता था और जब, अन्य आचार्य, राजाके मन को संतुष्ट कर सके ऐसा जवाब नहीं दे सकते थे, तब हेमचंद्र अनेक दृष्टांतों द्वारा, ऐसा रम-णीय उत्तर देता था कि, जिससे सिद्धराज का मन खुश खुश हो जाता था।...........एक समय सिद्धराज के मनमें यह शंका हुई कि, 'जगत् में मनुष्य का स्थान कैसा है तथा मनुष्य का उद्देश्य क्या है और वह कैसे प्राप्त हो सकता है?' जुदा जुदा अनेक धर्माचार्यों के पास से उसने इसका जवाब मांगा परंतु किसी से

संतोषकारक जवाब न दिया गया। सब ही ने उत्तर देने के समय, अपना मत श्रेष्ठ बतलाकर, अन्य धर्मों की निन्दा की। अंत में सिद्धराज ने निराश हो कर, हेमचंद्राचार्य से इसका जवाब मांगा, तब, उस नें एक बहुत अच्छा दृष्टांत दे कर सिद्धराज की शंका का निराकरण किया।....सिद्धराज इस जवाब को सुन-कर बहुत खुश हुआ।" हेमचंद्राचार्य के इस निष्पक्ष-पातपणे ऊपर प्रो. पीटरसन स्वयं बडा मुग्ध हुआ था।

सिद्धराज का अवसान।

इस प्रकार, भगवान् श्री हेमचंद्राचार्य के सहवास से, सिद्धराज के मनमें, जैनधर्म के विषयमें, बहुत कुछ आदर उत्पन्न हो गया था। यद्यपि, स्पष्टपणे उसने अपने कुलधर्म का त्याग नहीं किया था, तथापि, जैनधर्म की तरफ उसका भक्तिभाव विशेष रहता था। हेमचंद्राचार्य को बडी आदर की दृष्टि से देखता था। 'सिद्ध-हैम-शब्दानुशासन' नामक महान् व्याकरण आपने इसी के

कथन से बनाया था। यह राजा बडा न्यायी और विद्याविलासी था। ४९ वर्ष तक राज्य-भार वहन कर संवत् ११९९ में, इस ने देह छोड दिया।

हेमचंद्राचार्य का विहार।

जब तक, सिद्धराज जीवित था तब तक, बहुत कर के आपका वास, पाटन ही में रहता था। यद्यपि शास्त्रों में, मुनिजनों को चिरकाल पर्यंत, एक स्थान में रहने का निषेध किया है, परंतु भगवान् उत्सर्गापवाद और द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के, पूर्ण ज्ञाता थे। अतः उन्होंने, अनेक प्रकार से, जैनधर्म की प्रभावना होने का महान् लाभ समझ कर, राजा के उपरोध से अधिक समय तक, पाटन में ही रहना स्वीकार किया था। गुरु महाराज और श्रीसंघकी भी यही इच्छा थी। जब सिद्धराज का देह पात हो गया, तब आपने थोडे समय के लिए पाटन छोड दिया और अन्य प्रदेशों में विचरने लगे। इस विहार काल में आपने जैनधर्म की बहुत प्रभावना की। हजारों मनुष्यों को जैनधर्म का स्वीकार कराया।

अपने अपूर्व उपदेश द्वारा, प्रजा को नैतिक और धार्मिक जीवन का सन्मार्ग दिखाया। अवकाश के समय में अनेक ग्रंथों की रचना कर, जैन–साहित्य की शोभा में वृद्धि की और भारत की भावी प्रजा के ऊपर अत्यंत उपकार किया।

पुनः पाटन में प्रवेश।

सिद्धराज के बाद गुर्जरभूमि के अधिपती महाराज कुमारपाल देव हुए। कितनेक वर्षो तक तो आप अपने राज्य की सुव्यवस्था करने में तथा शत्रुओं का मान मर्दन करने में, लगे रहे। दिग्विजय करके अनेक राजाओं को, अपनी आज्ञा के वशवर्ती किये। राज्य की सीमा भी बहुत दूर तक वढाई। जब राज्य निष्कंटक हो गया और किसी प्रकारका उपद्रव न रहा तब, आप शांति से प्रजा का पालन करने लगे। देशमें सर्वत्र शांति फैल गई और कला कौशल की वृद्धि होने लगी। यह सब वृत्तांत जब भगवान् हेमचंद्राचार्य को ज्ञात हुआ तब, आपको अत्यंत खुशी हुई। चित्त वडा प्रसन्न हुआ। शासनो-

द्धारकी की हुई प्रतिज्ञा के, पूर्ण होने का अवसर नजदीक आया हुआ समझ कर, पुनः पाटन नगर को पवित्र किया। श्रीसंघ ने, इस वखत आपका पुर-प्रवेश वडे समारोह से कराया। आपके आगमन से शहर में सर्वत्र हर्ष छा गया।

प्रतिज्ञा-पूर्ण, सफल मनोरथ।

कुमारपाल महाराज को, पूर्वावस्थामें-राज्यप्राप्ति के पूर्व में-आपने अनेक संकटों से बचाये थे। इस कारण वे, आपके उपकार भार से तो दवे हुए थे ही। इस समय आपने, महाराज को प्राणांत भय से रक्षित किए, जिस से, उस उपकार की सीमा, अत्यंत वढ गई। आपकी इस प्रकार, निष्कारण परोपकारता को जानकर, महाराज वडे प्रसन्न हुए। आपकी तरफ उनका भक्तिभाव अत्यंत वढ गया। पूर्व में जो वचन दे चुके थे, उसका स्मरण हो आया। उदयन मंत्री द्वारा सूरीश्वरजी को अपने पास बुलाये और चरणों में मस्तक रख कर

कहा- "भगवन् ! आपने जो जो उपकार, इस क्षुद्र प्राणी पर किये हैं, उनका बदला तो मैं अनेक जन्मों द्वारा भी नहीं दे सकता, परंतु इस समय, जो कुछ मुझे आपकी कृपा से मिला है, उसे स्वीकार कर, उपकार के अपार भार को कुछ हलका कर, इस सेवक को उपकृत कीजिए। इस राज्य और राजा के आप ही स्वामी है। यह जन, यह मन और यह धन सब आप ही की सेवामें समर्पण है। इस अनुचर की यह तुच्छ प्रार्थना स्वीकार करें।" राजा के इन नम्र वाक्यों को सुन कर सूरीश्वर अत्यंत आनंदित हुए। मनोरथों के सफल होने का समय सामने आया हुआ देख, क्षणभर, आनंद के अपार सागर में, निमग्न हो गये। आप उत्कृष्ट योगी थे। अत्यंत निस्पृही थे। महा दयालु थे। केवल परोपकार के निमित्त ही आपका अवतार हुआ था। आप को न धन की जरूरत थी, न मान की। न राज्य की इच्छा थी न पूजा की जरूरत थी! आपको केवल संसार मात्र के प्राणियों को अभय दान दिलाने की; और

परमात्मा महावीर के पवित्र शासन की वैजयंती पताका को, सारे भूमंडल में उडती हुई देखनेकी ही कामना, आपकी यह भव्य भावना, कल्पवृक्ष समान, सर्वेच्छायों को पूर्ण करने में समर्थ और तत्पर, ऐसे महाराजाधिराज कुमारपालदेव द्वारा, पूर्ण होगी; ऐसा जान कर राजा से कहा—"राजन्! भिक्षा माँग कर, लूखे सुके अन्न द्वारा, उदरपूर्ति करने वाले, जंगलों और शून्य गृहों में भूमिमात्र पर पडे रहनेवाले और केवल परमात्मा का ध्यान धरने वाले हम योगियों को, तुमारा राज्य तो क्या परंतु देवाधिपति महेंद्र का महाराज्य भी, तुच्छ सा प्रतीत होता है। हमारे ब्रह्मानंद के अनंत सुख आगे, समग्र संसार का वैभव भी अणुमात्र ही प्रतीत होता है, तो फिर, परिणाम में विरस ऐसे इस तुच्छ राज्य को लेकर हम क्या करें? हमने जो तुमारे ऊपर उपकार किया है वह स्वार्थ साधन के लिए नहीं, किंतु, भावी काल में तुमारे द्वारा, जगत् का महान् उपकार होनेवाला समझ कर, हमारा मुख्य कर्तव्य जो,

संसार की सेवा करनेका है; उसका पालन करनेके लिए हमने तुमारी सहायता की है। पूर्व सुकृत के योगसे अब तुमें उत्तम संयोग मिलें हैं, इस से, इन के द्वारा, संसार को सुख पहुंचा कर अपने प्रजापति पद को सार्थक करो। यदि, हमारे उपकार का बदला देने की ही, तुमारी दृढ इच्छा है तो हमारी इच्छा पूर्ण करो। हम जगत्में अहिंसा, और जैनधर्म का पूर्ण रूप से उत्कर्ष देखना चाहते हैं; इस लिए, हमारी इन तीन आज्ञाओं का पालन करो, जिस से तुमारा और तुमारी प्रजा का कल्याण हो। प्रथम तो, प्राणी मात्र का वध बंध कर सब जीवों को अभय दान दो। दूसरा, *प्रजा की अधोगति के मुख्य* कारण, जो दुर्व्यसन—द्यूत, मांस, मद्य, शिकार आदि हैं उनका नाश करो। तीसरा, परमात्मा महावीर की पवित्र आज्ञाओं का पालन कर, उसके सत्य धर्मका प्रचार करो।" महाराज कुमारपाल बडे कृतज्ञ थे, भव्य थे, दयालु थे और अल्प संसारी थे। अल्प ही समय

आप श्रेष्ठ कहने लगे। महाराज कुमारपाल के नित्यपाठार्थ जो आपने 'वीतरागस्तोत्र' लिखा है, उस में आप कहते हैं कि—

यत्राल्पेनापि कालेन त्वद्भक्तेः फलमाप्यते ।
कलिकालः स एकोऽस्तु कृतं कृतयुगादिभिः ॥

अर्थात्—हे वीतराग! जिस कलियुग में, अल्प समयमें ही तेरे भक्त श्रेष्ठ फल प्राप्त कर लेते हैं, वह कलिकाल ही हमारे लिए तो सदा रहो! हमें उस सत्–युग से क्या मतलब है कि जिस में, तेरे धर्म के विना व्यर्थ ही संसार में मारे मारे फिरते थे। आगे चलकर आप कलिकाल में भी वीतराग के शासन की एकच्छत्रता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि—

श्राद्धः श्रोता सुधीर्वक्ता युज्येयातां यदीश तत् ।
त्वच्छासनस्य साम्राज्यमेकच्छत्रं कलावपि ॥

अर्थात्—हे देव! यदि, शुद्ध श्रद्धा से निर्मल है अंतःकरण जिस का ऐसा, श्राद्ध तो श्रोता हो, और सक-

लशास्त्रपारंगत तत्त्वपारीण ऐसा, वक्ता हो, तो कलिकाल में भी तेरे शासन का एकच्छत्र साम्राज्य हो सकता है। यह श्लोक बडे मार्केका है, इसमें भगवान् श्रीहेमचंद्राचार्य ने अपने जीवन का अनुभव प्रगट किया है। वे कहते हैं कि जहाँ, युगान्तर्वर्ती सकलशास्त्र का पारगामी (मेरे समान,) जैनधर्मका वक्ता उपदेशक है, और चौलुक्यचक्रचूडामणि महाराज श्रीकुमारपाल देव जैसा श्रोता—श्रावक है, उस कलिकाल में भी जैन–शासन का, एकच्छत्र साम्राज्य हो इस में आश्चर्य क्या ?

सूरीश्वरकी ज्ञानशक्ति–ग्रंथनिर्माण।

भगवान् हेमचंद्राचार्य के जीवन को जगत् में शाश्वत प्रकाशित रखनेवाला और विधर्मीयों को भी आश्चर्य उत्पन्न करानेवाला, उनका अगाध ज्ञानगुण था। उनके जैसा सकलशास्त्रों में पारंगत, अत्यंत, ढूंढने पर भी कोई नहीं मिलेगा। इस अपरिमित ज्ञानशक्ति से मोहित होकर, तत्कालीन सर्व धर्मके विद्वानों ने "कलिकाल-

सर्वज्ञ" ऐसी महती उपाधि, उनको समर्पण की थी। सचमुच ही आप "कलिकालसर्वज्ञ" थे, इस में जरा भी अत्युक्ति नहीं। इस बातकी सत्यता, आपकी अपार ग्रंथरत्नराशी, आज भी जगत को करा रही है। आप के ग्रंथों के ढेर को देख कर पाश्चात्य विद्वान् भी विस्मित होते हैं। वे भी आपको "ज्ञान के महासागर" (ocean of Knowledge) कह कर बुलाते हैं। कहा-जाता है कि आपने अपने जीवन काल में ३५०००००० (साढे तीन क्रोड) श्लोक प्रमाण ग्रंथ लीखे थे। परंतु भारतवासीयों के दुर्भाग्य से वहुत से ग्रंथ काल के कराल गाल में दवगये—नष्ट हो गये। इतना होने पर भी, जितने ग्रंथ वर्तमान काल में विद्यमान हैं, वे भी थोडी संख्यावाले नहीं। विद्यमान ग्रंथश्रेणी ही आज विद्वत्समूह को विस्मय करा रही है। विद्याके सकल विषयों में आपकी अवाधित गति थी। कोई भी विषय ऐसा नहीं था कि जिसका आपने अवगाहन नहीं किया हो यां जिसके ऊपर, अपनी चमत्कारिक लेखिनी न

उठाई हो! व्याकरण, न्याय, काव्य, कोप, अलंकार छंद, नीति स्तुति इत्यादि सब विषयों पर आपने एक या अनेक ग्रंथ लिखें हैं। कई कई ग्रंथ तो ऐसे अपूर्व हैं कि जिनकी समानता करने वाले, जगत् में दूसरे ग्रंथ ही नहीं है। हमारी बहुत इच्छा थी कि, हम इस लेख में आपके ग्रंथों का विस्तार से उल्लेख करेंगे। परंतु लेख बढ जाने के कारण, स्थानाभाव हो जाने से, उस इच्छा को पूरी नहीं कर सके। आप के ग्रंथों का समूह इतना बडा और विचित्र है कि यदि उसका विस्तार से विवेचन किया जाय तो एक खासा पुस्तक बन जाय।

शिष्यश्रेणि—और शरीरांत।

सूरि भगवान् का शिष्यसमूह बहुत बडा और प्रभावशाली था। साधु समुदाय में, प्रबंधशतकर्ता—श्रीरामचंद्र, महाकवि—श्रीबालचंद्र, अनेक विद्यासंपन्न—श्रीगुणचंद्र, विद्याविलासी—श्रीउदयचंद्र, इत्यादि मुख्य थे। श्रावकसमुदाय में, महाराज श्रीकुमारपाल देव, महामात्य श्रीयुत उदयन, राजपितामह श्रीआम्रभट, दंडनायक

श्रीवाग्भट, राजघरट्ट श्रीचाहड, श्रीसोलाक इत्यादि अनेक राजवर्गीय तथा लक्षावधि प्रजावर्गीय श्रीमंतादि थे।

इस प्रकार वहुत समय तक अपने देहपुंज के पवित्र प्रकाश से सूरीश्वरजीने जगत् को प्रकाशित किया अपने आयु की समाप्ति का समय प्राप्त हुआ देख, भगवान् ने सकल शिष्यगण को समीप में बुलाया। आत्मिक उन्नति के विषय में विविध प्रकार के हितकर वचनोंद्वारा अमृत-तुल्य उपदेश दिया। जिसे सुनकर महाराज कुमारपाल का हृदय भर आया। सूरि महाराज ने उनको सांत्वन करने के लिये अनेक मिष्ट वचन कहे। अंतसमय में आपने निरंजन, निराकार और सहजानंदी परमात्मा का पवित्र ध्यान कर, वहिर्वासना का त्याग किया। विशुद्ध आत्मपरिणति में रमण करते हुए, निर्मल समाधिसहित दशम द्वार से प्राण त्याग किया! संवत् १२२९ में सारे संसार को शोकसमुद्र में डवोकर, इस भूमंडल पर से कलिकाल सर्वज्ञ भगवान् श्रीहेमचंद्राचार्यरूप लोकोत्तर चंद्र, अस्त होगया!

उपसंहार।

पाठको ! सूरि भगवान् के इस चरित्र-सारांश से आप को यह ज्ञात हो जायगा कि, वे कैसे प्रभावशाली पुरुप थे, उन में कैसे कैसे गुणों का सन्निपात हुआ था। सचमुच ही वे एक अद्धितीय महात्मा थे। उन के गुणों का वर्णन करते प्रो. पीटरसन लिखते हैं कि— "हेमचंद्र एक बडे भारी आचार्य थे। दुनिया के किसी भी पदार्थ पर उन का तिल मात्र भी मोह नही था" तथा "उस महापुरुप ने अपनी बडी आयु और जोखमदार जिंदगी को बुरे कामों में न लगाकर, संसार का भला करने में बीताई थी। उन के किये हुए सुकृत्यों के बदल इस देश की प्रजा को उन का बडा भारी उपकार मानना चाहिए।" प्रोफेसर के इन वचनों में हम इतने शब्द और मिलायेंगे, और कहेंगे कि—वे एक बडे भारी महात्मा थे, पूर्ण योगी थे, उत्कृष्ट जितेन्द्रिय थे, अत्यंत दयालु थे, महा परोपकारी थे, पूरे निस्पृही थे, निष्पक्षपाती थे, सत्य के उपासक थे,

और कलिकालमें सर्वज्ञ थे। आप के जीवन से संसार का बहुत उपकार हुआ, जैनधर्म का उद्धार हुआ, और सत्य का प्रचार हुआ। धन्य है महात्मन्! तेरे पवित्र जीवन को! वंदन हे भगवान्। तेरे सम्यग् ज्ञान, दर्शन और चारित्र को!!

राजर्षि श्री कुमारपाल देव।

सत्त्वानुकम्पा न महीभुजां स्या-
दित्येष क्लृप्तो वितथः प्रवादः।
जिनेन्द्रधर्मं प्रतिपद्य येन,
श्लाघ्यः स केषां न कुमारपालः॥

(श्रीसोमप्रभाचार्यः।)

व्यावहारिक जीवन।



हाराज कुमारपालदेव इस कलियुग में एक अद्वितीय और आदर्श नृपति थे। आप बडे न्यायी दयालु, परोपकारी, पराक्रमी और पूरे धर्मात्मा थे।

विक्रम संवत् ११४९ में आपका जन्म हुआ था और संवत् ११९९ में राज्याभिषेक हुआ था। एक पुरातन पट्टावली में राज्याभिषेक की तिथी 'मार्गशीर्ष शुक्ल चतुर्थी लिखी है। राज्यप्राप्ति के बाद लगभग १० वर्षपर्यंत आपने राज्य की सुव्यवस्था करने का, और उस की सीमा वढाने का प्रयत्न किया दिग्विजय कर के आपने अनेक वडे वडे राजाओं को अपनी प्रचंड आज्ञा के आधीन किये। आप अपने समय में अद्वितीय विजेता और वीर राजा थे। भारत वर्षमें, उस समय आप की बराबरी करनेवाला और कोई राजा नहीं था। आप का राज्य बहुत वडा था। श्रीहेमचंद्राचार्य ने 'महावीरचरित' में आप की आज्ञा का पालन "उत्तर दिशा में तुरकस्थान, पूर्व में गंगा नदी, दक्षिण में विंध्याचल और पश्चिम में समुद्र पर्यंत" के देशों में होना लिखा है। प्रोफेसर मणीलाल नथुभाई द्विवेदी लिखते हैं कि—"गुजरात याने अणहिलवाड के राज्य की सीमा बहुत विशाल मालूम देती है। दक्षिण में ठेठ

कोलापुर के राजा उस की आज्ञा मानते थे। और भेंट भेजते थे। उत्तर में काश्मीर से भी भेंटे आती थी। पूर्व में चेदी देश तथा यमुना पार और गंगापार के मगध-देशपर्यंत आज्ञा पहुंची थी। और पश्चिम में सौराष्ट्र तथा सिंधु देश और पंजाव का भी कितनाक हिस्सा गुजरात के तावे में था। 'राजस्थान इतिहास' के कर्ता कर्नल टॉड साहिव को, चितौड के किले में, राणा लखणसिंह के मंदिर में, एक शिलालेख मिला था, जो संवत् १२०७ का लिखा हुआ है। उस में महाराज कुमार-पालके विषय में लिखा है कि "महाराज कुमारपाल ने अपने प्रबल पराक्रम से सब शत्रुओं को दल दिये जिसकी आज्ञाको पृथ्वी ऊपर के सव राजाओं ने अपने मस्तक ऊपर चढाई। जिसने शाकंभरी के राजा को अपने चरणों में नमाया। जो खुद हथियार पकड कर सवा लक्ष (देश) पर्यंत चढा, और सव गढपतिओंकों नमाया। सालपुर (पंजाव) तक को भी उस ने उसी तरह वश किया।" (वेस्टर्न इण्डिया टाडकृत.)

इन सब प्रमाणों से महाराज कुमारपाल क राज्य के विस्तार का खयाल होजात है। भारत वर्ष में, इतने वडे साम्राज्य को भोगनेवाले राजा वहुत कम हुए।

आपकी राजधानी अनहिलपुर–पाटन, भारत के उस समय के सर्वोत्कृष्ट नगरों में से, एक थी। व्यापार और कलाकौशल से, बहुत वढी चढी थी। समृद्धि के शिखर पंहुची हुई थी। राजा और प्रजा के सुंदर महालयों से तथा मेरु पर्वत जैसे ऊंचे और मनोहर देव भुवनों से अत्यंत अलंकृत थी। हेमचंद्राचार्य ने 'द्याश्रय महाकाव्य' में इस नगरी का वहुत वर्णन किया है। सुना जाता है कि उस समय इस नगर में १८०० सो तो क्रोडाधिपति रहते थे। इस प्रकार महाराज एक वडे भारी महाराज्य के स्वामी थे।

आप प्रजा का पालन पुत्रवत् करते थे। अपने राज्य में एक भी प्राणी को दुःखी नही रखना चाहते थे। प्रजा आपको 'राम' का ही दूसरा अवतार समझती थी। प्रजा की अवस्था जानने के लिए, गुप्त वेश से

आप शहर में भ्रमण करते थे। हेमचंद्राचार्य कहते हैं कि—"दरिद्रता, मूर्खता, मलिनता इत्यादि से जो लोक पीडित होते हैं वे मेरे निमित्त से हैं या अन्य से? इस प्रकार औरों के दुःखों कों जानने के लिए राजा शहर में फिरता रहता था।" इस प्रकार जब गुप्त भ्रमण में महाराज को जो कोई दुःखी हालत में नजर पडता था तो, आप झट अपने स्थान पर आकर, उस के दुःख दूर करने की चेष्टा करते थे। 'द्व्याश्रय महाकाव्य' के अंतिम सर्ग (२०) में भगवान् श्रीहेमचंद्र लिखते हैं कि—"महाराज कुमारपाल ने एक दिन रस्ते में, एक गरीब मनुष्य को, चिल्लाते हुए और जमीनपर पडते हुए ऐसे ५–७ बकरों कों खींच कर लेजाता हुआ देखा। महाराज ने पूछा की 'इन मरे हुए जैसे विचारे पामर प्राणिओं को कहाँ ले जाता है? मनुष्य ने कहा 'इन को कसाई को यहाँ बेचकर, जो कुछ पैसा आयगा, उस से उदरनिर्वाह करूंगा। यह सुन कर महाराज बडे खिन्न हुए और सोच ने लगे कि 'मेरे दुर्विवेक से ही इस तरह लोक हिंसा में प्रवृत्त होते हैं

इस लिए धिक्कार है मेरे प्रजापति नाम को! इस प्रकार अपने आत्मा को ठपका देते हुए राजभवन में आए और अधिकारीयों को सख्त आज्ञा दी कि—'जो झूठी प्रतिज्ञा करे उसे शिक्षा होगी, जो परस्त्रीलंपट हो उसे, अधिक शिक्षा होगी, और जो जीव हिंसा करे उसे, सब से अधिक कठोर दंड मिलेगा। इस प्रकार की आज्ञा पत्रिका सारे राज्य में भेज दो, अधिकारीयों ने उसी वखत उक्त फरमान सर्वत्र जाहिर कर दिया। इस प्रकार सारे महाराज्य में—यावत् त्रिकूटाचल (लंका) पर्यंत—अमारि घोषणा कराई। इस में जिन को नुकसान पहुंचा उन को तीन तीन वर्ष तक का अन्न दिया। मद्यपान का प्रचार भी सर्वत्र बंध कराया। *यज्ञयाग

* इस बात ऊपर गुजरात के प्रख्यात विद्वान्, सद्गत प्रो. मणिलाल नथुभाई द्विवेदी लिखते हैं कि—"कुमारपाल ने जब से अमारी घोषणा (जीवहिंसा बंध) कराई तब से यज्ञयाग में भी मांस-बलि देना बंध हो गया, और यव तथा शाली होम ने की चाल शरु हुई। लोकों की जीव ऊपर अत्यंत दया बढी। मांस-भोजन इतना निषिद्ध हो गया कि, सारे हिंदुस्तान (बंगाल

मे भी पशुओं के स्थान पर अन्न का हवन होना शुरु हुआ! एक दिन महाराज सोये हुए थे। इतने में किसी के रोने की अवाज सुनाई दी। आप ऊठ कर अकेले ही उस स्थान पर पहुंचे। जा कर देखा तो एक सुंदर स्त्री रोती हुई नजर पडी। उसे पूछनेपर मालूम हुआ कि, वह एक धनाढ्य गृहस्थ की स्त्री है, उसका पति और पुत्र दोनों मर गये। वह इस लिए रोती थी कि, 'राज्य का पूर्वकाल से यह क्रूर नियम चला आता है कि, संतति हीन मनुष्य की मिल्कत का मालिक राज्य है' अतः इस नियमानुसार मेरी जो संपत्ति है वह तो सब राज्य ले लेगा तो फिर मैं अपना जीवन किस तरह बिताऊँगी। इस लिए मुझे भी आज मर जाना अच्छा है। महाराज

पंजाव, इत्यादि) में, एक या दूसरे प्रकार से, थोडा वहुत भी मांस, हिंदु कहलानेवाले, उपयोग में लाते है, परंतु गुजरात में तो उसका गंध भी लग जाय तो, झट स्नान करने लग जाते हैं; ऐसी वृत्ति लोकों कि उस समय से बंधी हुई आजपर्यंत चलीजा रही है।" (देखो 'द्व्याश्रयकाव्य' का गुजराती भाषांतर, गायकवाड सरकारका छपाया हुआ।)

ने यह सुन कर उसे आश्वासन दिया और कहा कि 'तूं मर मत। राजा तेरा धन नहीं लेगा। सुखपूर्वक तूं अपनी जिंदगी को धर्मकृत्य करने में विता।' स्वस्थान पर आकर महाराज ने मन में सोचा कि इस प्रकार, राज्य के क्रूर नियम से प्रजा कितनी दुःखी होती होगी? आपका अंतःकरण दया से भर आया। प्रजा के इस त्रास को नहीं सहन कर सके। आपने अधिकारीयों को बुलाकर कहा कि—'निष्पुत्र मनुष्य की मृत्यु के बाद, उस की संपत्ति राज्य ले लेता है यह अत्यंत दारुण नियम है। इस से प्रजा बहुत पीडित होती है, इस लिए यह नियम बंध करो। चाहे भले ही मेरे राज्य की ऊपज में लाख दो लाख तो क्या परंतु क्रोड दो क्रोड रुपये का भी क्यों न घाटा आ जाय' अधिकारीयों ने आपकी आज्ञा को मस्तक चढाया और उसी क्षण सारे राज्य में इस कायदे की क्रूरता दाब दी गई जिस से प्रजा के हर्षका पार नहीं रहा।" तथा कर-दंड वगेरह भी आपने बहुत कम कर दिये थे। इस प्रकार आपने प्रजाकों अत्यंत सुखी कीथी।

धार्मिक-जीवन।

यहाँ तक हमने आपके व्यावहारिक-सामाजिक जीवन का उल्लेख किया। अब कुछ थोडे से शब्द, धार्मिक आत्मिक जीवन के विषय में, कह कर, इस प्रस्तावना की समाप्ति करेंगे।

आप जिस प्रकार नैतिक और सामाजिक विषयों में औरों के लिए आदर्शस्वरूप थे, उसी प्रकार धार्मिक विषयों में भी आप उत्कृष्ट धर्मात्मा थे, जितेन्द्रिय थे और ज्ञानवान् थे। श्रीमान् हेमचंद्राचार्य का जब से आपको अपूर्व समागम हुआ तभी से आपकी चित्तवृत्ति धर्म की तरफ जुडने लगी। निरंतर उन से धर्मोपदेश सुनने लगे। दिन प्रति दीन जैनधर्म प्रति आपकी श्रद्धा वढने तथा दृढ होने लगी। अंत में संवत् १२१६ के वर्ष में, शुद्ध श्रद्धानपूर्वक जैनधर्म की गृहस्थ-दीक्षा स्वीकार की। सम्यक्त्वमूल द्वादश व्रत अंगीकार कर, पूर्ण श्रावक बने। उस दिन से निरंतर त्रिकाल जिनेन्द्र भगवान् की पूजा करने लगे। परम गुरु श्रीहेमचंद्राचार्य की विशेष

रूप से उपासना करने लगे। और परमात्मा महावीर-प्रणीत अहिंसास्वरूप जैन-धर्म का आराधन करने लगे। आप बडे दयालु थे, किसी भी जीवकों कोई प्रकार का कष्ट नहीं देते थे। पूरे सत्यवादी थे, कभी भी असत्य भाषण नहीं करते थे। निर्विकार दृष्टिवाले थे, निज की राणीयों के सिवाय संसार मात्र का स्त्रीसमूह आपको माता, भगिनी और पुत्रीतुल्य था। महाराणी भोपलदेवी की मृत्यु के बाद आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत पालन किया था! राज्यलोभ से सर्वथा पराङ्मुख थे मद्यपान, तथा मांस और अभक्ष्य पदार्थों का भक्षण कभी नहीं करते थे दीन दुःखीयों कों और अर्थी जनों को निरंतर अगणित द्रव्य दान करते थे। गरीब और असमर्थ श्रावकों के निर्वाह के लिए दरसाल लाखों रुपये राज्य के खजाने में से दिये जाते थे। लाखों रुपयों व्यय कर जैन शास्त्रों का उद्धार कराया और अनेक पुस्तक-भंडार स्थापन किये। हजारों पुरातन जैनमंदिरों का जीर्णोद्धार कराकर तथा नये बनवा कर भारत-भूमि को अलंकृत

की। तारंगादि तीर्थ क्षेत्रों पर के, दर्शनीय और भारत वर्ष की शिलपकला के अद्वितीय नमूने रूप, विशाल और अत्युच्च मंदिर आज भी आपकी जैनधर्म प्रियता को जगत् में जाहीर कर रहे हैं। इस प्रकार आपने जैनधर्म के प्रभाव को जगत् में वहुत वढाया। संसार को सुखी कर अपने आत्मा का उद्धार किया। एक अंग्रेज विद्वान् लिखता है कि—"कुमारपाल ने जैनधर्म का वडी उत्कृष्टता से पालन किया और सारे गुजरात को एक आदर्श जैन-राज्य वनाया।" अपने गुरु श्रीहेमचंद्राचार्य की मृत्यु से छ महीने वाद, १२३० में, ८० वर्ष की आयु भोगकर, इस असार संसार को त्याग कर स्वर्ग प्राप्त किया!

अंतिम निवेदन।

पाठको! ऊपर जिन दो महापुरुषों का संक्षेप में उल्लेख हैं उन ही पुण्यात्माओं का विस्तार इस चरित्र में है। इस को अच्छी तरह पढिये और अपने आत्मा को

निर्मल करिये. हर एक समाज और देश की उत्कृष्ट संपत्ति उस के आदर्श पुरुष ही है। मनुष्य जीवन को उन्नत करने के लिए महात्माओं का पवित्र जीवनचरित्र ही एक सर्वोत्तम साधन है। जिस समाज और देश को अपने, पूर्व के समर्थ पुरुषों के प्रचंड सामर्थ्य का खयाल नहीं है, उन के सुकृत्यों का अभिमान नहीं है और उन की आज्ञा का पालन नहीं है, वह समाज और देश कभी उन्नति पर नहीं पहुंच सकता। इसलिए, प्रिय जैनबंधुओं! ऐसे महात्माओं के जीवनचरित्रों को पढकर अपने पूर्वजों के गुणों और सुकत्यों को अपने हृदय में स्थापन करो. उन की पवित्र आज्ञाओं का पालन करो और गये हुए जैन-धर्म के गौरव को, अपने पुरुषार्थद्वारा एक दफे फिर पीछा लाकर, जगत् को उस का सर्व श्रेष्ठत्व बतलादो!

अंत में इस चरित्र के लेखक स्नेहास्पद श्रीयुत मुनि

श्रीललितविजयजी महाराज का मैं उपकार मानता हूं कि जिन के प्रसंग से प्रस्तावना में मुझे महात्माओं के गुणानुवाद करने का यह सु अवसर मिला !

वीर सं. २४४२ }
माघ सुदि १५. }

मुनि जिनविजय।



॥ ॐ नमः ॥

श्रीकुमारपालचरित.



ॐनमः श्रीमहावीरस्वामिने परमात्मने।
परब्रह्मस्वरूपाय, जगदानंददायिने ॥ १ ॥

इस भारतभूमिमें क्षत्रीलोग अपने नामानुसार राज्य रक्षणमें हमेशासेंही प्रयत्न करते आये हैं, और कर रहे हैं. कालानुक्रमसें भिन्न भिन्न कारणोंद्वारा इनके छत्रीस वंशोंकी स्थापना हुइ है.[1]

(३६ वंशोंके नाम)

१ इक्ष्वाकु २ सूर्य ३ चंद्र ४ यादव ५ परमार ६ चोहाण ७ चौलुक्य ८ छिंदक ९ सिलार १० सैंधव ११ चावडा १२ प्रतिहार १३ चंदुक १४ राठ १५ कूर्पट १६ शक १७ करट १८ पाल १९ करंक

---

१ देखो टॉड राजस्थान भाग पहला.

२० वाउल २१ चंदेल २२ उहिल्ल २३ पौलिक २४ मौरिक २५ चंदुयाणक २६ धान्यपालक २७ राजपालक २८ अमंग २९ निकुंभ ३० दधिलक्ष ३१ तुरुंदलियक ३२ हूण ३३ हरियर ३४ नट ३५ माषर और ३६ पौषर.

इनमेंसें चौलुक्य वंशी राजा भूवड विक्रमसंवत्के आठमेंसैकेके लगभगमें कन्नोजकी "कल्याणी" नाम राजधानीमें राज्य करता था, इसने चावडा वंशके राजा जयशेखरकी गुर्जर भूमिपर अपनी सत्ता जमाई थी.

और यह राजधानी अपनी लडकी मिनणदेवीकों उसके विवाहसमय कंचुकदान (दाज) में दीथी, इसी गुजरात देशके अंतर्गत वढियार देशमें पंचासर गामके बाहिर एक जंगलमें जैनाचार्य श्रीशीलसूरिजी शकुन देखने जा रहे थे, उन्होंने वहां एक वृक्षकी शाखाके साथ लटकाई हुई झोलीमें किसी सुंदर बालककों देखा, और पासमें खडी हुई उसकी

माताकों पूछा कि, बाहिन! तुम कौन हो? उसने जवाब दिया कि रणभूमिमें मृत्युगत हुए गुजरातके राजाकी मैं राणी हूं और कन्नोज देशके भूवड राजाके भयसें इस पुत्रकी रक्षावास्ते यहां आकर रही हूं.

इसके बाद तीसरे पहरतकभी छायाकों झोलीपर स्थिर देख आचार्य महाराजने विचार किया कि यह लडका आगामी कालमें महाप्रतापी राजा होना चाहिये ऐसा विचार लडकेकों उसकी माता सहित गाममें पहुंचाया, और श्रावकोंकों सर्व वृत्तान्त सुनाकर लडकेका वनराज यह नाम रखा, और श्रावकोंकों सर्व प्रयत्नपूर्वक उसकी रक्षा करनेका भी फरमान किया, लडका जब ९ वर्षका हुआ तो बचोंसें छत्र चामर आदि राजचिन्होंसें क्रीडा करने लगा; इस प्रकार कितनाकवक्त जानेपर श्रावकोंने उसकी माताकों कहा कि इस लडकेकों कोई शूरवीर आदमीकेपास रखनेकी जरूरत है.

लडकेकी माताको यह आई, इसमें

उसने वनराजकों अपने भाई सूरपालके सपुर्द किया सूरपालकों चोरी करनेका व्यसन होनेसें वनराज भी मामेके साथ चोरी करना सीखा, एकदिन दोनो जन काकर गाममें कोई शाहुकारके घर चोरी करने गये, वनराजने दहींका एक बरतन देख कर उसमेंसें दहीं खाया, और शेष सर्व वस्तु छोडकर चला गया, प्रातःकाल हुआ तब उस दहींके भाजनमें लगी हुई हाथकी रेखाओंको देख शेठकी लडकी श्रीदेवीने विचार किया कि यह कोई भाग्यशाली मनुष्य है. आत्मा और परमात्माकी साक्षीसें मेरा इसका बहिनभाईका संबंध हो, अब मैं उसको देखेविना भोजन न करूंगी.

इस प्रतिज्ञाकी जब वनराजकों खबर पडी तो दूसरी रातकों वनराज श्रीदेवीके पास आया, और सर्व अपना वृत्तान्त कह सुनाया, श्रीदेवीने उसका सत्कार किया. वनराजने खुशी होकर कहा "तूं मेरी बहिन हुई, इस लिये मैं मेरे राज्याभिषेकमें तेरे

हाथसेंही तिलक कराउंगा," यह वचन देकर वहांसे अन्यत्र चला गया; एक समय जंगलमें उसे जांब नामा कोई आदमी जो कि जातिका बनिया होनेपर भी बडा लडवैया था मिला, उसकी सूरवीरों वाली चेष्टा देखकर वनराजने कहा मेरे राज्याभिषेकमें मुझे मिलना तुझे अपना प्रधान मंत्री बनाउंगा, जांबने इस आज्ञाको शिरपर चढाया, और राजकुमारको कुच्छ रास्तेकी खरची देकर स्वस्थानपर चला गया, एक समयका जिकर है कि, राजा भूवडके नौकर सौराष्ट्र देशसें ६ महिनेके मामले में २४ लाख अशरफियें ४०० घोडे लेकर आ रहे थे, वनराजने उनपर एकदम हुमला किया, और सब कुछ खोस लिया—पीछे १ वर्षतक जंगलमें रह कर सैन्य एकत्र किया, और कनोजकी सत्ता अपने आधीन की, और नवीन नगर आबाद करनेके लिये अच्छे स्थानकी तालायश करने लगा.

१ खननी.

इतनेमें एक भरवाड (गुज्जर) जिसका नाम "अणहिल्ल" था, वनराजकों मिला, उसने खरगोश-(ससले) से डरकर जहां कुत्ता भागा था ऐसी जगह बतलाई वनराजने भी वह जगह पसंदकी, और गुज्जरके नामकों कायम रखनेवास्ते "अणहिल्लपुर नामसें नगर बसाया.

नगरमें बाजार मंदिर राजमहेल हवेलियां सभामंडप रंगमहेल भोयरे छज्जे विहारस्थान आरामस्थान अनाथाश्रम धर्मशाला दानशाला अश्वशाला हस्तीशाला आयुधशाला हुन्नरशाला नाटकशाला और भंडार आदि स्थान अद्वितीय शोभाशाली बनाये गये. और विक्रम संवत् ९०२ में श्रीमान् शील सूरिजीसें जिन चैत्योंकी और राज्यकी स्थापना करवाई, पूर्व प्रतिज्ञाके अनुसार श्रीदेवीसें राज्यतिलक करवाया, और जांबको बुलाकर उसे महामंत्री राजकार्यवाहक बनाया, यह राजा (वनराज) ५० वर्षकी उमरमें राज्य गादीपर

बैठा था, पुन्यात्मा कृतज्ञ राजाने अपने गुरु शील-सूरीजीके उपदेशसें जो जैनमंदिर तयार कराया था उसमें पंचासर गामसें पार्श्वनाथ स्वामीकी प्रतिमा मंगवा कर विराजमान की.

उसीही मंदिरमें अपनी भी आराधकके तौरपर मूर्ति तयार करा कर रखवाई, यह सब मंदिर मूर्ति-वगैरह पाटणमें आजतकभी मौजूद हैं, इस राज्यकी स्थापना जैनमंत्रोसें हुई है, इसीही वास्ते जैनेतर द्वेषी-लोग इस राज्यकी प्रशंसा करते शरमाते हैं.

वनराजने ६० वर्ष पर्यंत निष्कंटक राज्य किया, और ११० वर्षकी उमरसें इसका स्वर्गारोहन हुआ.

इसके पीछे योगराजने ३५ क्षेमराजने २५ भूव-डने २९ वैरसिंहने २५ रत्नादित्यने १५ सामंत-सिंहने ७ वर्ष गुजरातकी राज्यसत्ता भोगी, इसत-रहसें चावडा वंशके तावे (स्वाधीन) गुजरातका राज्य १९६ वर्षतक रहा, पीछे इनकी लडकीके वंशमें याने चौलुक्य वंशमें गया.

(चौलुक्य वंशकी व्यवस्था)

कन्नोजके राजा भुवडका कर्णादित्य नाम पुत्र था. उसका पुत्र चंद्रादित्य और चंद्रादित्यका सोमादित्य लडका था, सोमादित्यके राज १ वीज २ और दंडक ३ यह (३) पुत्र हुए, उनमेसें राजकी शादी अणहिल्लपुर पाटणके राजा सामंतसिंहकी वहिन लीलादेवीसें हुई थी, लीलादेवी गर्भवती ही कालधर्मकों प्राप्त हुई थी, इसलिये उसके उदरकों चीर कर वालक निकाला गया था, और उस लडकेका नाम "मूलदेव," रखा गया था सामंतसिंह दारू पीया करता था एक दिन दारूके नशेमें वेभान होकर उसने मूलदेवकों राजगादीपर वैठाया, और होश (चेतन) आनेपर उठा दिया, ऐसा दोदफा करनेपर मूलदेवकों गुस्सा आया. उसने सामंतसिंहकों मार डाला और स्वयं राज्य

---

१ इसके जन्मसमय मूलनक्षत्र था इसलिये लडकेका नाम मूलदेव रखा गया था.

गादीपर बैठ गया, इस राजाने ५५ वर्षतक अणहिल्लपुर पाटणका राज्य किया.

इसके पीछे चामुंडराजाने १३ वर्षतक राज्य किया.

इसके पीछे इसका लडका वल्लभराज राजा हुआ, इसने केवल ६ मास राज्य किया.

इसके पीछे इसका छोटा भाई दुर्लभराज राजा हुआ, इसने ११ वर्ष ६ मास राज्य किया, और वैराग्य आनेसें अपने मंत्री भीमदेवकों राज्य सपुर्द कर स्वयं तीर्थयात्राकों चल निकला.

दुर्लभराज फिरता फिरता जब मालवामें आया तब राजा मुंजने उसे कहा "तुम हमसें लडाई करो अथवा राजचिन्ह छोड दो" यह राजा वैराग्यवान् था, विचारने लगा कि लडाई करनेसें धर्ममें अंतराय पडेगा, इसवास्ते मुझे राजचिन्होंकी कुछ जरूरत नही, ऐसा सोचकर उसने योगीका वेष स्वीकार किया, और राजचिन्ह छोड दिये.

इस समाचारके सुननेसें भीमदेवने बहुतही बुरा मनाया !!! गुजरात और मालवाकी राजधानियोंमें यह क्लेशका पहला कारण उपस्थित हुआ, भीमदेवकी बकुल देवी और उदयमती (२) राणिये थीं बकुल-देवीसे क्षेमराज और उदयमतीसें कर्णदेव (२) पुत्र हुए, भीमदेवने उदय मतीकों वचन दिया हुआ था कि "तेरे पुत्रकों राज्यगादि दूंगा" भीमदेव ४२ वर्ष तक राज्य भोगस्वर्गारूढ हुआ, इसके अनंतर कर्णदेव राज्यसिंहासन पर बैठा, इसकों लोग भोगीकर्णके नामसें बुलाते और पिछानते थे, इसकी राणीका नाम मिनल देवी था.

इसकी कुक्षीसें प्रतापी जह्वसिंह देवका जन्म हुआ, यह कुमार महाप्रतापी होनेसें स्वयमेव ३ वर्षकी उमरमें राजासिंहासनपर बैठगया था, उस वक्त राजाने ज्योतिषी लोगोंकों पूछा कि यह समय कैसा है ? उन्होने जबाव दिया कि, 'महाराज ! यह राज्याभिषेकका महामुहूर्त है, सुनकर राजाने

ज़यसिंह कुमारका उसी वक्त राज्याभिषेक किया, और ज़यसिंह देवकी राजसत्ता प्रवर्ताइ; कर्णदेव २९ वर्ष राज्य कर परलोक गत हुआ, इसके पीछे यह जयसिंह देव सिद्धराज वडा भारी राजा हुआ, एक दिन राजा जयसिंहदेवकी सभामें एक भाट आया, और राज़सभाकों देखकर खुशीसें बोला अहो! "महाराज सिद्धराजकी सभाभी महाराज मदनवर्म्मा जैसीही है, सिद्धराजने आश्चर्यसें पूछा कि मदनवर्मा कौन है? भाट बोला राजन्! पूर्वदिशामें महोवकपुर नगर है उसमे विद्वान्शिरोमणी सर्व कलाकुशल दानेश्वरी मदनवर्मा राजा राज्य करता है, उसकी राजधानीका बयान करनेमें बृहस्पति भी अशक्त है.

इस बातपर राजा सिद्धराजकों विश्वास नही आया उसने तालायश करनेके लिये अपने एक हुश्यार मंत्रीकों भेजा, मंत्रीने भी ६ महीनेतक उस नगरमें ठहर कर सर्व हालात जानलिये, और आकर सिद्धराजसें कहा कि "महाराज! उस भाटका कहना सर्वथा

सत्य है उस नगरका वर्णन करना जिव्हाके अगोचर है." यह सुनकर राजाकी उस राजधानीके लेनेकी तीव्र अभिलाषा हुई.

और फौरन् अपने सैन्यकोंसाथ लेकर चल पडा, महोबक पुरसें ९ कोशके फासलेपर जाकर पडाव डालदिया, सिद्धराजकी फौजसें मदनवर्माकी प्रजाकों बडाभारी क्षोभ पैदा हुआ.

इधर राजा मदनवर्मा उद्यान क्रीडा (वगीचेकी सैर) करने गया हुआ था, वहां उसे किसी नोकरने आकर अरज की, कि "महाराज! गुजरातका राजा सिद्धराज फौज लेकर आपके साथ लडाई करने आया है !!!

इस वातकों सुनकर मदनवर्मा हसकर वोला कि "युद्ध करनेवास्ते १२ वर्ष धारानगरीमें पडा रहा था वह ही सिद्धराज कि दूसरा" ?

जाओ सिद्धराजकों कहोकि तुम तो लोभ और धूर्तपणा करना जानते हो, अगर तुम हमारे राज्य-

पर हाथ डालनेकी मरजी करते हो तो हम लडाई करनेकों तयार हैं, और अगर पैसेके भूखे हो तों सोभी देनेको तयार हैं, यह वात मंत्रीवर्गने सिद्धराजकों कही तव सिद्धराजने ९६ क्रोड सोना मोहोरें मांगी, मदनवर्म्माकी आज्ञानुसार खुशीसें रुपया दिया गया, तोभी सिद्धराजके न जानेपर मदनवर्माके मंत्रियोंने कहा "आप अबीतक क्युं यहांसें कूच नही करते"? सिद्धराजने जवाव दिया मैं तुमारे राजाकों देखना चाहता हुं, मदनवर्माकों मालूम होनेसें सिद्धराजकों मुलाकातके लिये अपने मेहेलोमें आनेकी आज्ञा दी, परस्पर दोनों राजा हाथसें हाथ मिलाकर मिले.

मदनवर्माने सिद्धराजकों वैठनेवास्ते सुवर्णासन दिलाया, सिद्धराजके बैठ जानेपर मदनवर्मा हसकर बोला हे राजेंद्र! आज हमारा पूर्ण पुन्योदय जाग्या जो तुमारे जैसे प्राहुणे चलकर हमारे घर आये,

सिद्धराज—मुझे 'राजेंद्र' कहकर बुलाना अयुक्त है-पहले जो आप 'लोभी' और 'धूर्तका' खिताब दे चुके हैं वह ही सत्य है.

मदनवर्मा (हंसकर)—आपकों किसने कहा?

सिद्धराज—राजन्!—आपके मंत्री मंडलने.

मदनवर्मा—देव! कलियुगमें अल्प आयुः, परिमित लक्ष्मी, तुच्छ बल, इस हालतमें भी अगर आदमी संतोष न करे तो उसकों लोभी कहना क्या झूठ है?

सिद्धराज—सत्य है, धन्य है आपकी सहनशीलता और विचार बुद्धिकों, आप जैसे उदार और धर्मी-राजाओं के दर्शनसें मैं मेरा जन्म सफल मानता हूं, परमात्माकी कृपासें आप चिरकाल तक राज्य लक्ष्मीके भोगनेवाले रहें.

इस प्रकार वार्तालाप होनेसें परस्पर दोनो राजा-ओंके मनमें प्रेमके अंकुर पैदा हुए, और मदनवर्माने अपनी सर्व दर्शनीय वस्तुएँ दिखाकर सिद्धराजकों विदाय किया.

(श्री हेमचंद्राचार्यका जन्मवृत्तान्त)

एक समयका जिकर है कि जैनधर्मके आचार्य श्रीदत्तसूरजी विहार करते करते वागड देशके वटपद्र नगरमें गये.

वहां यशोभद्र नाम राजा राज्य करता था, वह स्वभावसेंही दयालु था, एक दिन उसने श्री सूरिजीके पास आकर भावसें नमस्कार किया.

और धर्म सुननेकी इच्छा भी प्रगट की, आचार्य महाराजने भी उसकों धर्मार्थी और धर्मके योग्य जानकर उपदेश दिया किः—

परिमियमाऊ जुव्वणमसंठियं वाहिवाहिरं देहं ।
परिणइविरसा विसया, अणुरज्जसि तेसु किं जीव? ॥ १
तत्तमिणं सारमिणं, दुवालसंगीई एसभावत्थो ।
जं भवभमणसहावा, इमे कसाया चइज्जंति ॥ २ ॥
पिउभाउ भयणि भज्जा-भडाण पचक्खमिक्खमाणाणं।
जीवं हरइ मच्चु, नत्थि सरणं विना धम्मं ॥ ३ ॥

विवेकीकों थोडे निमित्तसें भी सन्मार्ग की प्राप्ति हो सक्ती है. एकदा किसी किसाणने अपने खेतमें आग लगाई, उसमें एक सापण जलकर मर गई, यह बनाव राजाने भी देखा और विचार किया कि गृहस्थाश्रम ऐसे ऐसे घोर पापोंकाही कारण है, इस लिये विवेकीकों आत्मकल्याण वास्ते इसका त्यागही श्रेयस्कर है, यह भावना उसकी इतने दरजेतक चढ- गई कि उसने संसार त्याग कर श्रीदत्तसूरिकेपास दीक्षा स्वीकार की, और यावज्जीव ६ विगयका त्याग और एकान्तरोपवास करनेका कठिन अभिग्रह धारण किया, थोडेही अरसेमें शास्त्रार्थका अध्ययन कर यह मुनि गीतार्थ हुआ, गुरुमहाराजने योग्य जानकर आचार्यपद प्रदान किया, इन्होंने बहुत अरसेतक भव्य जीवोंकों धर्ममें लगाया, और आयुःके आखीरमें शुद्ध अनशन कर स्वर्गारुढ हुए, इनके पीछे श्रीप्रद्युम्न सूरि पट्टधर आचार्य हुए, इनके बाद गुणसेन सूरि आचार्य हुए, इनके शिष्य देवचंद्रसूरी पट्टधर आचार्य

हुए, यह देवचंद्रसूरि बडेही त्यागी और वैरागी थे, एक दफा विहार चर्यामें चलते चलते धंधुका गाममें जो कि काठियावाडमें आजतक भी इसी नामसे महशूर और आबाद है आये.

इस नगरमें चांगिल नामसे एक शाहुकार रहता था, उसकी धर्मपत्नी पाहिणी जैनश्राविका थी, इसकों एक दिन ऐसा स्वप्न हुआ कि "मैंने गुरु महाराजकों चिंतामणिरत्न दिया है."

सुबह उस धर्मात्माने यह स्वप्न श्रीदेवचंद्रसूरिकों सुनाया, और इसका फल पूछा, सूरि बोले बहिन! "थोडे अरसें में तुमारे घर बडा भाग्यशाली पुत्ररत्न पैदा होगा, तुमने वह लडका गुरुकों दे देना, भाविकालमें वह बालक जैन शासनका परम आधारभूत आचार्य होगा" इस प्रकार गुरुमुखसें स्वप्न

---

१ चांगिल "मोढ" जातिका वनिया था इस जातिके वनियोंकी धंधूकेमें आज कल भी सात आठसौ घरकी वस्ती है।

२ कु. पा.

फलको सुनकर आनंद मनाती हुई पाहिनी घर पहुंची, दैवयोग उसी दिन उसके गर्भ रहा और विक्रम संवत् ११४५ कार्तिक शुक्ल १५ की रातकों पुत्रका जन्म हुआ.

इस समय आकाशमें देववाणी हुई कि "यह पुरुष महान् तत्त्ववेता जैन शासनका उद्धार करनेवाला सूरिशेखर होगा!" महोत्सवपूर्वक स्वजनोंने बालकका "चंगदेव", नाम रखा, कुमारकी उमर जब ५ वर्षकी हुई तब एक समय माताके साथ जिन चैत्यमें दर्शन करके गुरुवंदन करने गया, और वहांपर उसवक्त आए हुए देवचंद्रसूरिके आसनपर चढकर बैठ गया! यह देखकर गुरुने लडकेकी माताकों कहा भद्रे! मेरा कहा हुआ स्वप्नफल तुझे याद होगा, अब उस वचनकी सिद्धिका समय निकट आता है.

बच्चेकों पास बैठाकर गुरुमहाराजने उसके लक्षण देखे और कहा कि, "अगर यह बालक क्षत्री कुलमें

उत्पन्न होता तो सार्वभौम राजा होता! अब दीक्षा लेवे तो कलियुगमें भी सत्युग जैसी प्रवृत्ति करानेवाला भाग्यशाली हो सक्ता है! गुरुमहाराजसें इस बातकों सुनकर खुशी मनाती हुइ पाहिनी अपने घर पहोंची.

इधर सूरिजीने संघके आगेवानोंकों बुलाकर सर्व वृत्तान्त सुनाया और उनको साथ लेकर स्वयं चांगिल शेठके घर गये. उस समय शेठके घरपर न होनेसे पाहिनीने स्वयं गुरुमहाराज और संघका बडा सन्मान किया, और हाथ जोडकर पूछा कि— भगवन्! श्रीसंघकी मुझे क्या आज्ञा है?। श्रीसंघने कहा कि शासनके उदय वास्ते तुमारे पुत्ररत्नकी याचना करनेके लिये हम सब तुमारे घर पर आये हैं। पुत्ररत्नकी याचनाके लिये स्वयं चल कर आये हुये गुरुमहाराजकों और श्रीसंघकों देखकर पाहिनीके नेत्रोंसे हर्षके अश्रु आये, और

मनमें विचार करने लगी कि, एक तो गुरुमहाराज सहित श्रीसंघका मेरे घर आना हुआ है, इधर लडकेका पिता घर नही है, इस समय मुझे क्या करना चाहिये? क्षणमात्र तो मनमें विविध प्रकारके विकल्प हुए, परंतु अंत्यमें यही निश्चय हुआ कि, श्रीसंघका तीर्थंकरदेव भी मान रखते हैं इसलिये मुझे भी जरुरी है कि, भगवान् श्रीसंघका मान रखना, यह विचार कर स्वजनसम्मति से चित्तकी प्रसन्नतापूर्वक पाहिनीने लडका गुरुमहाराजको दे दिया! गुरुमहाराज भी वहांसें विहार कर करणावती नगरीमें गये, वहांपर उदयन मंत्रीके घर मंत्रीके बच्चोंके साथ चंगदेवकाभी रक्षण पालन होने लगा. बालककी वैराग्य दशा और नम्रता देखकर सर्व संघने एकही आवाजसें उसकी प्रशंसा की.

इधर जब चंगदेवका पिता घर आया तब पाहिनीने गुरुमहाराजकों पुत्र देनेका सर्व वृत्तान्त निवेदन

किया, पुत्रप्रेम एक अनिवार्य प्रेम है, इसवास्ते शेठने वडाभारी दुःख मनाया, और "जहां तक पुत्रका मुंह न देखलुं वहां तक आहार पाणी नही करुंगा" ऐसी धारणा करके घरसें निकल पडा और थोडे अरसेमें करणावतीमें आ पहुंचा, श्रेष्ठि व्याख्यानके समय वहां पहुंचा था, इस लिये उसे गुरुमहाराज की धर्मदेशना सुनने का प्रसंग मिल गया.

उस त्यागी गुरुके मुखारविंदसें धर्मदेशना सुनकर शेठका मन प्रमुदित हुआ, उसवक्त "उदयन" मंत्रीभी गुरुमहाराजको वंदन करनेके वास्ते वहां आया हुआ था उसने भक्तिपूर्वक चांगिल शेठकों अपने घर बुलाकर भोजन कराया, और पुत्रकों शेठकी गोदमें बेठाकर ३ कीमती वस्त्र और ३ लाख.रुपै भेट किये, शेठ इस

१ एक कवीने इसपर क्या ही अच्छा कहा है.—

गोभद्रस्सगरस्तथा दशरथः श्रीमन्नृपः श्रेणिकः,
नागाख्यो रथिकः प्रसन्ननृपतिर्धात्रीधवः कोणिकः,
ज्ञानाढ्यो हरिभद्रसूरिमुनिपः, सूरिश्च शय्यम्भवः,
पुत्रप्रेमनिमोहिता भुवितले सद्ज्ञानभाजोऽपि हि ॥ १ ॥

बनावको देख हसकर बोला मंत्रिराज! आप मुझे ३ लाख रुपैका लोभ दिखाकर मेरा पुत्र लेना चाहते हैं. परंतु मेरा पुत्र अमूल्य है इसवास्ते मेरे इस पुत्रकी कीमतमें आपकी भक्तिही बसहै!!

मुझे आपके पैसेका प्रयोजन नही है. इसको तो में हाथ लगाना भी योग्य नहीं समझता! मैं अपना पुत्र अपनी खुशीसें आपको अर्पण करताहूं!!! इस बातकों सुनकर उदयन मंत्री अतीव प्रसन्न होकर बोला धन्य है आपकों जिन्होने ऐसी उदारता की है!!! आप जैसे सत्पुरुष जगत्में थोडे है. परंतु मेरी प्रार्थना है कि आप यह लडका गुरुमहाराजकों अर्पण करें तो बहोत अछा होवे, कारण कि गुरुमहाराजके पास रहनेसें यह बालक जगत्का पूजनीय होगा, चांगिलशेठ बोला यह विचार आपका मुझे सर्वथा मान्य है ऐसा करनेमें मुझे कोई तरहकी हरकत नही है। यह कहकर चांगिलने श्रीसंघके समक्ष बालक गुरु महाराजकों बडे आनंदसें समर्पण किया। गुरु-

महाराजने कहा हे भाग्यशाली! धनधान्य वगैरहके देनेवाले जगत्में अनेक हैं परंतु पुत्ररूपरत्न अपने उत्साहसें धर्मनिमित्त दान करनेवाले तुमारे जैसे पुन्यात्मा जगत्में थोडेही होंगे. पुत्रकों दीक्षा लेनेमें उत्साही देखकर चांगिलने खुशीसें आज्ञा दी। उदयन मंत्री आदिके वडे भारि उत्सव करनेपर शुभ मुहूर्तमें (विक्रम संवत् ११५४ मे) चंगदेवकों गुरुमहाराजने दीक्षा दी। और दीक्षासमय इसका नाम "सोमदेव मुनि" रखा सोमदेव मुनि संयम क्रियाकों थोडेही दिनोमें भली प्रकार सीखगये, और गुरुमहाराजके साथ विहार करते हुए नागपुर पहुंचे वहां "धनद" शाहुकारके घर गोचरीलेने गये तव आहारमें वैंस मिलनेसें वडे मुनिकों पूछा महाराज! इसके घरमें अशरफीयोंका ढेर लगा हुआ है तोभी ऐसा साधारण भोजन क्यों करता है? वृद्धमुनि वोले—इसका

---

१ प्रस्तुत महर्षिकी दीक्षा खंभातमें होनेका लेख अन्यत्र देखा जाता है।

नसीव (भाग्य) खराव आरहाहै, इसवास्ते घरमेंसें धनको निकालकर उसे कोयले समझकर वाहेर फैंक रहा है, इसकों यह कोयलेही नजर आरहेहै.

इन दोनो मुनियोंकी इसवातकों शाहुकारने सुना और नीचे आकर सोमदेव मुनिको अरज की कि महाराज! आप कृपा करके इस ढेर पर हाथ रखें, जिससें मेरा दरिद्र दूर होवे सोमदेवने भी उस श्रद्धालुकी प्रार्थना स्वीकार करके उस ढेर पर हाथ रखा वस कहनाही क्याथा? उसी वक्त उस मुनिके तपके प्रभावसें उस शाहुकारका वैरी देवता भाग गया, और कोयलोंका ढेर सुवर्णरूपसें दीखने लगा, इस चमत्कारकों देखकर सकल संघने वडी भारी खुशी मनाई. और उसी दिनसें सोमदेव मुनिकों "हेमचंद्र" नामसे वुलाने लगे, इस मुनिने विनयादि गुणोसें गुरुमहाराज तथा श्रीसंघके मनको अत्यंत संतोष पैदा किया। एक समय सरस्वती माता का आराधन करने वास्ते "हेमचंद्र" मुनि काश्मीरदेशमें

जानेकों तयार हुये, इधर सरस्वती देवीने विचार कियाकि–कलीकालांधकारमें सूर्य समान होनेवाले यह मुनि यदि काश्मीरमें आवेंगे, तो इनकों बहोत विघ्न उपस्थित होंगे, इसवास्ते मैं ऐसा करूं कि मुनिकी कार्यसिद्धिभी हो जावे और परिश्रमभी न पडे, ऐसा विचार कर देवी मुनिके पास आई। मुनिको ज्ञान और ध्यानमें लीन देखकर प्रसन्न हुई और आम्नायसहित बहुत विद्या मंत्र देकर अदृश्य होगई, "देशाटन कुशलता का कारणहै यह समझ कर गुरुमहाराजकी आज्ञासें श्रीहेमचंद्रमुनि श्रीदेवेंद्रसूरि और मलय गिरिसूरिकों साथ लेकर गौडदेश तर्फ विहार करगये, जाते जाते खिल्लुर गाममें इनकों कोइ वृद्ध मुनि मिला, जोकि रोगी मालूम पडताथा—इन तीनहि मुनियोंने वृद्धकी खूब वैयावच्चकी और पूछाकि महाराज! आप कहां पधारनेका ईरादा रखते हैं? वृद्ध मुनिने कहा मेरा विचार गिरनारकी यात्राका है, हेमचंद्र मुनिने

गामके संघको बुलाकर कहाकि-इस वृद्ध मुनिजीकों सुखपूर्वक गिरनार पहुंचानेकी योजना करदी जावे तो अच्छा है.

श्रीसंघने खुशीसे इस बातकों स्वीकार किया-रात्रीकों प्रतिक्रमणादि नित्यकृत्य करके सोगये, और प्रातःकाल हुआ कि-हेमचंद्र आदि ३ हि मुनियोंनें अपने आपको गिरनार पर्वत पर देखा इतनेमें शासनदेवीने आकर कहा महाराज! आप पुन्यशालियों की यहां ही कार्यसिद्धि होजावेगी इसवास्ते आप गौड, देश तर्फ न जावें. यह कहकर देवीने आम्नाय सहित केईएक औषधि मंत्र और उनके गुण बताये, और भक्तिपूर्वक नमस्कार कर स्वस्थानपर चलीगई. एक समय श्रीहेमचंद्रजीके गुरुमहाराजने इन तीनही मुनियोंकों श्रीसिद्धचक्रजीका मंत्र आम्नायसहित बताया उस मंत्रकी सिद्धिमें उत्तर साधकपणा पद्मिनी स्त्री करसक्ती थी. श्रीहेमचंद्रादि पद्मिनी स्त्रीकी तलाश करते हुए कुमार गाममे पहुंचे, इस नगरके

बाहिर धोबी कपडे धोकर सुकाता था, उसमें एक कपडा अत्यंत खुशबूदार मालूम पडनेसें मुनियोने धोबीसे पूछा-यह कपडा किसका है? धोबीने कहा-हमारे गामके मालिककी स्त्रीका है, इसबातकों सुनकर मुनि गाममें गये, और उस ठाकुरकों मिले. गामके मालिक ठाकुरने पूर्ण भक्तिसें मुनियोंकों अपने स्थानमे उतारा दिया और उन मुनियोंके पास हमेशा उपदेश सुनने लगा—इन साधुओंके गुणों पर उसको बडा प्रेम उत्पन्न हुआ। एक दिन आकर बोला महाराज! आप जगत्सें सदा निरीह है. आपकों किसीसें कुछ प्रयोजन नही है तोभी मेरेलायक कोई काम होवे तो हुकम फरमाइये, मैं करेनेको तयार हुं. मुनियोंने उसकों बहुत दिनोंका परिचित जाणकर कहाकि-"हमारी श्रीसिद्धचक्रके मंत्रसाधनेकी मरजी है और वह मंत्र पद्मिनी स्त्रीके उत्तर साधक हुए विना सिद्ध नहि होसक्ता! हमने सुना है कि-आपकी स्त्री पद्मिनी है उसे साथ लेकर आप गिरनार पर

आवे और हमारे काममें मदद करें तो यह महान कार्यसिद्ध हो सक्ता है, स्वयं तुमने हाथमें खुली तलवार लेकर पास खडे रहना, उस वक्त यदि हमारे शरीरमें जराभी विकार देखो तो वेशक हमारी गरदन धडसें जुदी कर देने में पलभर देर न करनी !!! इतनी बात सुनकर ठाकुर आनंदसें बोला महाराज! आप तृण और मणिको लोह और सुवर्णकों समान दृष्टिसें देखनेवाले परम ब्रह्मके ध्यानसे आत्मसाधन करनेवाले परम योगी हैं आपका परमार्थरूप काम यदि मेरे कोई पदार्थसे सिद्ध होता होवे तो मुझे और क्या चाहिये!!! आप रैवताचलपर पधारो मैं पद्मिनीसह वहां आताहुं यह कहकर मुनियोंकों गिरनार तर्फ भेजा, और स्वयं पद्मिनीकों लेकर मुनियोंकें पीछेही पीछे वहां पहुंचा मुनियोंने गुरुमहाराजके हुकम मूजब अंबिका देवी की सहायतासें श्रीविमलेश्वरदेवकी आराधना की देवने प्रत्यक्ष होकरकर कहा "महाराज! आपके बुला-

नेपर मैं हाजर हुआहुं मुझसें कुछभी मांगिये" यह सुनकर श्रीहेमचंद्रजीने "राजाकों जैनी बनानेकी शक्ति मांगी, देवेंद्रसूरिजीने कांतिपुरीका जैनप्रासाद "सेरीपक नगरमें ल्यानेका वर मांगा–श्री मलयगि-

नोट–१ कलोल स्टेशन सें थोडे फांसलेपर पानसर सें करीबन ३ कोस पर यह एक प्राचीन नगर है, यहां थोडे दिन पहले कुछ प्रतिमाऎं जमीन में सें निकली हैं जोकि बहुत प्राचीन हैं, और एक टूटे फूटे "बावन जिनालय" मंदिरका निशान भी अभीतक मौजूद है, इस वैरान खंडेर में श्रीपार्श्वनाथस्वामीकी बहुत बडी खडी एक खंडित प्रतिमा और परिघर भी हयात है कुछ लोगोंका यह भी ख्याल है कि अबीतक जमीन में अनेक प्रतिमाऎं डटाई हुई हैं, पूर्वकालमें यह एक विख्यात तीर्थ था, अब यह स्थान प्रायः अप्रसिद्ध हैं, सुना है स्वर्गस्थ–शेठ–मनसुखभाई इस तीर्थ के पुनरुद्धार के लिये एक बडी रकम देना स्वीकार कर गये है, कुछ समयपूर्व हमने भी परमपूज्य प्रातःस्मरणीय श्रीमान् "हंसविजयजी" महाराजके साथ इस पवित्र तीर्थ की यात्रा की है, पंडित उत्तम विजयजी ने विक्रम संवत् १८८० में श्रीपार्श्वनाथ स्वामीका छंद बनाया है पार्श्वनाथ प्रभु के १०८ नामों का उल्लेख करते हुएयह लिखते हैं "जगत्वल्लभ कलिकुंड चिन्तामणि लोढणा "सेरिसा" स्वामी

रिजी महाराजने श्रीसिद्धांत की वृत्तियें करनेका वर मांगा—इसतरहसें इन तीनोंही महात्माओंने जुदेजुदे स्वस्वाभिष्ठ वर मांगे, सो देकर देव स्वस्थान परगया इस बातका अनुभव होनेसें उन साधुओंकी ध्यानकी धीरता ब्रह्मचर्यकी दृढता देवताकी करीहुई प्रशंसा आदिसें चकित होकर प्रातःकाल ग्रामाधिपतिने बहुत धनव्ययपूर्वक प्रभावना की और लोगोंके पास सर्व हकीकत जाहर की श्रीहेमचंद्रजीके इस प्रभावशालि वृत्तांतकों सुनकर और इनके विद्वत्ता आदि गुणोंसें रंजित होकर नागपुरके रहनेवाले "धनद" शेठने महामहोत्सवपूर्वक श्रीसंघ और गुरुमहाराजकी सम्मतिसें श्रीहेमचंद्रजीकों आचार्य पद दिवाया सुवर्ण जैसी कांति युक्त और चंद्र जैसी आल्हादक मूर्तिवाले होनेसें श्रीहेमचंद्रजीका नाम सर्व जनोंकों सार्थक लगने लगा.

नमिये" इससें सुप्रतीत है कि एकसौ वर्ष पहले यहां पार्श्वनाथ भगवान्‌का विख्यात तीर्थ था.

श्रीहेमचंद्राचार्यका सिद्धराजको धर्मोपदेश करना और सिद्ध हेम व्याकरणकी रचना—

एक समय सिद्धराज जयसिंहदेव सैर करनेको जारहेथे, रास्तेमें हेमचंद्राचार्यको देखा, और विचार करने लगे कि जरूर यह कोई महात्मा है, महात्मा पुरुषोंका दर्शन और उनको प्रणाम करना बडा भारी पुन्यका काम है,[१] इस आशयसे अपने हाथीको ठहरा कर वह राजा कुछ कहनेकी तयारी करताथा कि इतनेमेंही सूरिजी महाराजने प्रसन्नतापूर्वक कहा हे सिद्धराज भूपेंद्र! आपके गजराजको आगे चलाइए, इन्द्रका ऐरावण हाथी तुमारे इस हाथीसे भयभीत होता है, परंतु आप पृथ्वीके स्वामी है इसवास्ते इंद्रभी इस विषयमें अशक्त है!! राजा इस प्रशंसावाक्यसे

---

१ साधूनां दर्शनं पुण्यम्, तीर्थभूता हि साधवः।
तीर्थं पुनाति कालेन, सद्यः साधुसमागमः॥

प्रसन्न हुआ, और बोला महाराज ! मेरी प्रार्थना है कि-आप प्रतिदिन मेरे पास पधारकर मुझे धर्मोपदेश सुनावें-हेमचंद्र महाराजनेभी उसकी प्रार्थना मनमें रखकर प्रतिदिन राजसभामें आना और धर्मोपदेश सुनाना शुरु किया.

एक दफा सिद्धराज भूपतिने श्रीहेमचंद्रजीकों पूछा कि महाराज ! सर्व मतावलंबी लोग स्वस्वप्रशंसा करनेमें तत्पर हैं अब किस धर्मकों साचा समझना चाहिये ? सूरि महाराज बोले पुराणमें एक शंखका आख्यान है उसपर आप ध्यान देवें—

पूर्व कालमें शंखपुर नगरमें "शंखनामा" कोई शाहुकार रहता था, उसकी "यशोमती" नाम एक स्त्री थी कोई कारण बणनेसें यशोमती उपरसें शंखका स्नेह कमती होगया. और दूसरी स्त्रीका विवाह करके उसीहीके स्नेहमें गलतान हुआ पहिली स्त्रीपर सर्वथा विरक्त बनगया बलकि-यहांतककि-यशोम-

तिका मुंह देखना भी उसने छोडदिया—इस संकटमें पडीहुई यशोमती विचारने लगी कि—गरीबीकी हालत आनी, पतिका मरजाना नरकमें वास करना स्त्रीकों इतना दुःखदाई नहीं कि—जितना सौकनके अपमानका दुःख है—परंतु कर्मके आगे किसीका जोर नही है, एक दिन उसने कोई सिद्ध पुरुषकी सेवा करके आदमीकों पशु बनानेवाला मंत्र प्राप्त किया, उस मंत्रके प्रभावसें उसने अपने पतिकों बैल बनादिया—लोगोंमें इस बातके मशहूर होनेपर यशोमतीकी निंदा फैली. परंतु कोई उपाय न होनेसें वह केवल पश्चात्तापकीही भागिनी हुई—प्रतिदिन उस बैलकों चरानेवास्ते यशोमती खुद् जंगलमें जाया करतीथी—एक दिन बैलकों चरने वास्ते छोडकर स्वयं एक वृक्ष नीचे बैठी अपने किये हुए इस बुरे कामकों यादकर रुदन कर रहीथी—इतनेमें शिव पार्वती विमानमें बैठे जा रहेथे—

पार्वती बोली—महाराज! यह स्त्री क्युं रोतीहै?

शिवजी—अपनी मूर्खतासें.

पार्वती—इसने क्या मूर्खता की है?

शिवजी—पहले अपने पतिकों बैल बनाया और अब पछताती है!!

पार्वती—इस मूर्खनिने ऐसा क्युं किया होगा?

शिवजी—तुमारी स्त्रियोंकी लीला ऐसीही है!!

पार्वती—महाराज! ठीक कहो, क्या बात है?

शिवजी—सर्व वृत्तान्त आद्योपान्त कह कर–तुमारे वश पडा सो विचारा भाग्य योगसेंही बच सक्ता है.

पार्वती—प्राणनाथ! कोई ऐसी औषधी है कि जिससें फिर यह आदमी बनजावे?

शिवजी—प्रिये! इस वृक्षके मूलमें एक वेल है उसका यह स्वभाव है कि–उसे सेवन करनेसें पशुसें मनुष्य हो सक्ता है.

इस वार्तालापकों सुनकर यशोमतीकों खुशी हुई, परंतु उसे यह मालुम नहीं था कि इन सर्वौषधियोंमें

कौनसी औषधि प्रभावशालिनी है? इसवास्ते उसनें सर्व औषधि उखाड कर अपने पति बैलके आगे डाली, उसके खानेसें वह पशु मनुष्य हुआ—यशोमतीकी इस क्रियासें लोगोंमें प्रशंसा फैली.

हे राजेंद्र! जैसे वह प्रभाववाली औषधी दूसरी औषधियोंमें छिपकर अपने दिव्य प्रभावकों प्रकट नहीं कर सक्तिथी, वैसेही सत्यधर्मभी अन्यधर्मोंसे मिलकर अपने प्रभावकों दिखा नहीं सक्ता. परंतु कोईकोई अनुभवी ज्ञानी सत्यवक्ता आप्त पुरुष असली रहस्यकों जाणता है और उसीहीके उपदेशसें अन्य जिज्ञासुभी जाण सक्ते हैं, इस वास्ते सर्व धर्मोंका परिचय करके उसमेंसें सत्यधर्मकों ग्रहण कीजीये.

राजा और पर्षदा प्रसन्न होकर—धन्य है आपकों और धन्य है आपकी समझकों! समयान्तरमें राजाने मुनिराजसे फिर यह प्रश्न किया कि, किन किन कामोंके करनेसें धर्म होता है?

गुरु बोले—

"पात्रे दानं गुरुषु विनयः सर्वसत्वानुकंपा,
न्याय्या वृत्तिः परहितविधावादरः सर्वकालम् ।
कार्यो न श्रीमदपरिचयः संगतिः सत्सु सम्यग्,
राजन् सेव्यो विशदमतिना सैप सामान्यधर्मः ।१।"

एकदा श्रीहेमचंद्रसूरिजी जयसिंह राजाके आग्रहसें पाटणमें चउमासा रहे और व्याख्यानमें नेमिनाथ स्वामीका चरित्र वांचना शुरु किया. उसमें ऐसा अधिकार आया कि, "पांच पांडव जैन दीक्षा पालकर शत्रुंजय पर्वत पर मोक्ष गये." इस अधिकारकों सुनकर ईर्ष्यालु ब्राह्मणोंसे रहा न गया! राजाके पास जाकर बोले–पृथ्वीनाथ! यह साधु असत्य बोलनेवाले और नास्तिक हैं!!

राजाने पूछा—क्यों?

ब्राह्मण बोले—महाराज! भारतमें पांडवोंके वास्ते जो इतिहास है उससें यह उलटा बताते हैं!

राजा—इसपर हम विचार करेंगे.

ब्राह्मण—पृथ्वीनाथ ! धर्मद्वेपी और मृपा भापियोंको शिक्षा देना आपका आवश्यक धर्म है.

राजा—बेशक ! राजाका यही धर्म है, परंतु यह साधु धर्मद्वेपी और झूठ बोलनेवाले प्रतीत नहीं होते.

ब्राह्मण—(उदास होकर) आपकी मरजी ! परंतु इन के वास्ते हमारे शास्त्र तो साफ कहते हैं कि—

" हस्तिना ताड्यमानोऽपि न गच्छेज्जैनमंदिरम् " सुबह श्रीसिद्धराजने सूरिजीको बुलाया और सर्व लोगोंके समक्ष पूछा कि, पांडवोंका वर्णन आपके शास्त्रोंमें कैसा है ? सूरिजी बोले, हमारे शास्त्रोंमें ऐसा ही लिखा है कि, जैसा हमने सुनाया है. और महाभारतमें हिमाद्रिगमनका वर्णन है, अब व्यासके किये भारतमें उन्ही पांडवोंका वर्णन है कि, दूसरोंका सो कौन जाने ?

राजा—क्या महाराज ! पांडव भी पूर्वकालमें बहुत हुए हैं ?

आचार्य—हे राजेंद्र! सुनो, भारतमें ऐसा वर्णन है कि, भीष्म पितामहने अपने परिवारको कहा "मेरा अग्निसंस्कार ऐसी जगह पर करना जहां किसीका भी अग्निसंस्कार न हुआ हो"–इस बातको उन्होंने ध्यानमें रखा और भीष्मके गतप्राण होने बाद हिमालय पर्वत पर संस्कार करनेको गये, तब वहां ऐसी देववाणी हुई कि–

"अत्र भीष्मशतं दग्धं, पांडवानां शतत्रयम्।
द्रोणाचार्यसहस्रं तु, कर्णसंख्या न विद्यते."

हे राजशेखर! भारतके इस वाक्यसें आपका समाधान हुआ होगा! और श्रीशत्रुंजय पर्वत पर और नासिकमें पांडवों की मूर्तियें भी तयार हैं, इससे सिद्ध होता है कि, पांडव जैन हुए हैं.

राजा बोला अरे ब्राह्मणो! यह जैन मुनि कभी भी झूट नहीं बोलते, तुम लोग व्यर्थ ईर्ष्या करते हो!!

यदि तुमारे पास शास्त्रयुक्ति होवे तो बतलाओ!

इस तरह कह कर सूरि महाराजको विदाय किया. एकदा मालव देशको फतह करके राजा पाटण आया तब सर्व कवि लोगोंनें प्रशंसा की–हेमचंद्रसूरिनें भी अपूर्व रसयुक्त काव्योंसे प्रशंसा करी, जिसको सुनकर राजा अति प्रसन्न हुआ,* तब ब्राह्मण बोले म-

---

* 'देवचंद्रसूरिजीभी अनेक श्वेताम्बर मुनियोंको साथ लेकर राजसभामें जानेकेलिये तयार हुए, और सर्व मुनिमंडलसें पूछा कि सभामंडपमें जाकर राजाकी स्तुति कौन करेगा? अनेक विद्वानोंसें मंडित राजसभामें जाकर निःशंक होकर बोलना और अखिल परवादियोंसें अपने वचनका उत्कर्ष दिखाकर भूपतिके मनकों रंजित करना जैसी तैसी बात नहीं थी सब मंडल परस्पर विचार करनेमें व्यग्र हुआ समय सावधान और विद्वानोमें केसरी हेमचंद्रजीने नम्र होकर कहा प्रभो! आपके चरणसेवकको यह काम दिया जावे तो बडा अनुग्रह हो। गुरुमहाराजने भी इनका उत्साह देख खुशीसें कहा "जाओ वत्स! फते करो' हेमचंद्रजीने प्रमुदित होकर गुरुमहाराजकी आज्ञाको शिरोधारनकर राजसभामें प्रवेश किया और राजाकी जय सूचक नवीन अतिशय लालित्यभरे काव्योंसें स्तुति की, सिद्धराज बहुत प्रसन्न हुए और पूछा आप कुछ देरसें आये इसका क्या कारण? हेमचंद्रजीने कहा किसी अवसरोचित कार्यमें लगे

हाराज ! यह सब पंडिताई हमारे ही घरकी है क्यों कि, हेमचंद्रजीने हमारे व्याकरणादि शास्त्रोंसें ही यह शक्ति प्राप्त की है, राजाने इस विषयमें जब सूरिजीको पूछा तो, सूरजी बोले हम तो बाल्यावस्थामें श्रीजैनेंद्र व्याकरण पढे हैं ! राजा बोला वह व्याकरण तो प्राचीन होनेसें लुप्तप्राय होगया है, सूरजीने कहा अगर आप सहायता करें तो हम नया भी तैयार कर सक्ते हैं—

राजाने कहा मुझसे जो सहायता बन सक्तिहो वह करनेको तयार हूं, आप हुकम करें. सूरजीने कहा काश्मीर देशके प्रवर नाम नगरके सरस्वतीभंडारसें व्याकरणकी आठ प्रतियें हमको मंगवा दीजीये, राजाने फौरन मत्रीवर्गको काश्मीर भेजा, उन्होंने वहां जाके सरस्वती का आराधन किया, सरस्वतीनें साक्षात् आकर कहा "श्रीहेमचंद्र जैनाचार्यपर मैं अतिप्रसन्न हुं. आप बेशक पुस्तक ले जाईये" यह सुन

खुशीसें पुस्तक लेकर मंत्री पाटण आये और सारा हाल राजाकों सुनाया, प्रसन्नतापूर्वक राजा बोला धन्य है हमारे देशकों जिसमें ऐसे भाग्यशाली पुरुष विचरते हैं, सूरीश्वरनेभी उन व्याकरणशास्त्रोंकों एक वर्षमें अवगाहन किया, और थोडेही अरसेमें सवा-लक्ष श्लोक प्रमाण पंचाङ्गी व्याकरण तयार किया, राजाने उस पुस्तकको पट्टहाथी पर रखवा कर सारे शहरमें बडे महोत्सवपूर्वक फिराया और आनंदसें राजसभामें पधराया.

यह पुस्तक सर्व विद्वानोंके समक्ष वंचा करके पूजा सत्कारपूर्वक भूपतिने अपने सरस्वतीभंडारमें स्थापन कराया–ब्राह्मण लोगोंसें यह समय देखा नहीं गया–राजाके पास आकर बोले हे राजेन्द्र! शुद्धाशुद्धकी परीक्षा किये विना इस पुस्तक कों सरस्वतीभंडारमें रखना यह सर्वथा अयुक्त है!

राजा—परीक्षा और क्या होनी चाहिए?

ब्राह्मण—काश्मीरमें सरस्वतीके प्रासाद सन्मुख

"चंद्रकांत" जलकुंड है, उसमें डालनेसें जो पुस्तक नष्ट नही होवे वह शुद्ध कहा जाता है, इस तरहके ब्राह्मणवचनोंसें राजाका चित्त फिर संशयाकुल हुआ. और उसनें अपने मंत्रियोंकों पुस्तक देकर काश्मीर भेजा, उन्होंने वहां जाकर वैसाही किया—सरस्वती माताके प्रसादसें और कलिकाल सर्वज्ञकी कृति होनेसें वह पुस्तक दो घडीमें कुंडसें बाहिर तर आया.

इस चमत्कारी वृत्तान्तको देखकर काश्मीरके राजाने वारंवार उस व्याकरणशास्त्रकी श्लाघा की, और कलिकाल सर्वज्ञकी प्रशंसा करके स्वस्थानपर गया—इधर मंत्रियोंने सिद्धराजके पास आकर आद्योपान्त सर्व वृत्तान्त सुनाया, सुनकर राजाने अपार खुशी मनाई और ३०० लिखारीयोंको बुलाकर इस ग्रंथकी नकलें करा प्रसिद्ध प्रसिद्ध भंडारोंमें रखवाई और इस व्याकरण की स्थानस्थानमें प्रवृत्ति कराई, इस समयमें अनेक महाकवियोंने इस तरह प्रशंसा की थी,

बालकके जन्म समय प्रायः सर्वशकुन अनुकूल थे व्यतिपातादिका परिहार था दिग्मंडल प्रशान्त था पृथ्वी सरस थी पक्षीगणके शब्द अनुकूल थे परस्पर राजयुद्धभी बंद थे। पुत्रजन्मके समाचार सुनते ही त्रिभुवनपालने दासियोंकों पारितोपिक देकर संतुष्ट किया था बंदीमोचन पशुपालन अनुकंपा दान आदि सकल कार्य बडे उत्साह और समारोहसें किये गये थे १२ में दिन सकल स्वजनोंकों भोजन दिया गया वस्त्रादिसें सत्कार किया गया और उन सबकी सम्मतिसें कुमारका 'कुमारपाल' नाम रखा गया, विविध क्रीडाओंसें बाल्यावस्थाका अनुभव करते हुए चरित्रनायक युवावस्थाकों प्राप्त हुए पिताने एक सुंदरी सुशीला राजकन्याके साथ इनका विवाह कर दिया इनकी इस प्रथम पत्नीका नाम 'भोपलदेवी' था पूर्व संचित सुकृतके वशसें उपार्जित पुन्यके प्रभावसें कुमार सांसारिक सुखोंसें अपने जीवनकों सुखमय बनाने लगे.

कुमारपालके 'महिपाल' और 'कीर्तिपाल' दो छोटे भाई थे और प्रेमलदेवी देवलदेवी दो बैनें थीं, प्रेमलदेवीकी शादी गौर्जरपति राजा जयसिंहदेवके सेनापति 'कृश्नदेव' के साथ, और देवलदेवीकी शाकंभरी (सांभरके) राजाके साथ हुई थी, एक-दफा कुमारपाल जयसिंह देवकी सेवा करनेकों पाटण आया.

तब राजाके पास बैठे हुए हेमचंद्राचार्यकों देखकर विचार करने लगा कि, यह जैनमुनि सर्वकलाओंमें प्रवीण सर्व शास्त्रोंके जाणकार राजमान्य होने चाहियें इनकी सेवा करनेसें मेरा भाग्य जरूरही खुलेगा, इस आशयसें कुमारपाल सूरिजीके उपाश्रये आने और धर्म सुणने लगा.

सूरिजीका धर्मस्नेह उसके हृदयमें वृद्धिगत होनेसे हररोज गुरूपदेशकों प्रेमसे ग्रहण करने लगा, एकदिन सूरीश्वर की देशनामें गुण प्राप्ति करनेका उपदेश चल रहाथा तब कुमारपालने पूछा महाराज! सर्व

नेसें कुमारपालने "परनारी सहोदर" व्रत अंगीकार किया.

उसवक्त श्रीहेमचंद्र सूरजीने यह शिक्षा दी.

हरिणी छंद.

प्रसरति यथा कीर्तिर्दिक्षु क्षपाकरसोदरा-
भ्युदयजननी याति स्फातिं यथा गुणपद्धतिः।
कलयति परां वृद्धिं धर्मः कुकर्महतिक्षमः,
कुशलजनने न्याय्ये कार्ये तथा पथि वर्तनम् ॥१॥

इस प्रकारसें गुरूपदेशामृतका पान करता हुआ कुमारपाल कुछ अरसा पाटणमें रहा और राजा जयसिंहदेवकी आज्ञा लेकर दधिस्थली (दहीथली) तर्फ विदाय हुआ—शेषकोई अन्यत्रका आवश्यक कार्य न होनेंसें सुखे सुखे वहांही रहने लगा.

सिद्धराज के संतान नहीं होनेसें वह बहुत फिकर किया करतेथे, एकदिन श्रीहेमचंद्रजीको साथ लेकर तीर्थयात्रा करनेकों निकले, शत्रुंजय महातीर्थकी

यात्रा करके वडे प्रसन्न हुए; तीर्थ रक्षावास्ते १२ गाम ईनाम दिये, और वहांसे गिरनार पर्वतपर पहुंचे, वहां की यात्रा करके अत्यंत खुशी मनाई, और ऐसा ठहराव किया कि "इस तीर्थपर कोईनेभी पलंगपर न वैठना, ज्यादा आहार न करना, स्त्रीका प्रसूत न कराना, दहीं न वलोना, (रिडकना)" वहांसें चलकर सोमेश्वरकी यात्रा करनेको देवपुर पाटण (जो कि आजकाल प्रभासपाटणके नामसें काठियावाड में प्रसिद्ध है) पहुंचे, वहां सोमेश्वरके दर्शन करके "कोडिनार" गये और वहां श्रीहेमचंद्र सूरजीकों अरज गुजारि कि महाराज! आप यहां अंविका माताका आराधन करके पूछो कि "मेरी गादीपर कौन वैठेगा सूरिजीने ३ उपवास करके देवीकी आराधन की और प्रत्यक्ष वुलाकर पूछा तो जवाव मिला कि; सिद्धराजके पिता करणका वडा भाई क्षेमराज उसका पुत्र देवप्रसाद उसका लडका त्रिभुवनपाल जो अवी दहिथलीमें राज्य करता है. उसका

लडका "कुमारपाल" तुमारे पीछे जगत्प्रसिद्ध संप्रति महाराज जैसा राजा होगा—अंबिकाका यह कथन सूरजीने राजा सिद्धराजको सुनाया— राजाने इस विषयमें बहुत दुःख मनाया और इस वचनकी परीक्षा करने वास्ते ज्योतिषी लोक बुलाये उनकोंभी अति आदरपूर्वक पूछा तो जवाब मिला कि महाराज! आपकी राज्यसत्ताका कुमारपालही अधिकारी होगा! एकदिन कोई ब्राह्मणने आकर कहा "राजन्! आप पैदल चल कर सोमनाथ की यात्रा करो तो आपकी मन इच्छित कार्यसिद्धि होसक्ति है" राजाने वैसेही किया सोमनाथने दर्शन देकर कहा राजन्! "तेरे भाग्यमें पुत्र नही है" क्रोड उपायसेंभी कार्यसिद्धि नही होगी, यह सुनकर अत्यंत दुःखी हुआ राजा पाटण आया.

और कुमारपालके मारनेके उपाय सोचने लगा, बल्कि कुमारपालके बाप त्रिभुवनपालकों मरवा भी दिया.

कुमारपाल पिताकी अंत्य क्रिया करके पाटण आया. और बापके अकस्मात् मृत्युकी तालायश करने लगा–किसी वृद्ध आदमी द्वारा उसे मालुम हुआ कि तुमारे पिताकों इसतरहसे मरवा दिया गया है, और तुमारे वास्ते भी यह दिन जल्दी ही आनेवाला है, अब तुमको हुशियार रहनेकी जरूरत है, यह सुनकर कुमारपालने विचार किया कि किसतके फेरफारसें आदमीकी दशाका फेरफार होते देर नहि लगती, अब वक्त गुजारने वास्ते कोई निर्भयस्थानपर जाना चाहिये, यह सोचकर "काहन" नाम राज्याधिकारी जो कि इसका बनेवी लगताथा, उसके पास गया, और जाकर अपना कुलहाल सुनाया, काहनदेव बोला तुझेपास रखनेमें मुझे इनकार (ना) नहीं परंतु राजाकों मालुम पडनेपर तेरा और मेरा दोनोंका विनाश होगा, इसवास्ते वेश बदला कर

---

१ कृष्णदेव.

देशाटन करना ठीक है, समय समयपर राज्यतर्फकी खबरें मैं तुझे पहुंचाता रहुंगा.

काहनदेवका यह कहना कुमारपालकों पसंद आया—और अपनी स्त्री भोपलदेवी वगैरह सकल परिवारकों दहिथलीमेंही छोडकर आप अकेला देशान्तरमें निकल पडा, और जटाधारी तापस बनकर पृथ्वीमें घूमने लगा. फिरता फिरता एक दफा राज्यकी खबरें सुनने वास्ते पाटण आ पहुंचा—और कर्णमेरु मंदिरके पुजारीयोंमें मिलकर रहने लगा पुजारीयोंने उसे पिछान लिया, और राजाकों जाकर फौरम खबर दी. राजाने हुकम दिया कि, कल सब पुजारियोंको भोजन हमारी तर्फसें दिया जावेगा,

सब मिलकर राजघरमें आये इधर अपने पोशीदा (खानगी) सेवकोंकों राजाने समझा दियाथा कि "सब पूजारियोंके तुमने खुद पाओं धोने उनमेसें कुमारपालकों पिछाणकर मुझे खबर देनी" जिसके

पाओंमें छत्र और मच्छका चिह्न देखो उसकों कुमारपाल समझना.

यह खबर कुमारपालकोंभी पडी तब वह पुजारियोंको बोला भाई तुम यहां ठहरो, मुझे उलटी होने लगी है, चित्त स्वस्थ होनेपर मैं भी आ कर भोजन करताहुं, यह कहकर वहांसे निकला आलिंगनाम कुंभारके घर गया और उससें अपना हाल सुनाया. उसनेभी दया लाकर अपने घरपर मट्टीके बरतनोंमें छिपाकर एकदिन रखा—राजाके नौकरोंने आकर तालायश की. परंतु खबर न पडनेसें पीछे लोटगये, रातकों कुमारपाल और कुंभारकी सुखप्रश्नादि बात होनेसें परस्पर दोनोंकी प्रीति हुई, कुमारपालनें कहा मैं तुमारे इस उपकारकों कभी नहीं भुलंगा—प्राणदान यह सबसें बडा दान है, यह कहकर कुमारपाल वहांसे निकल पडा, दैवयोग जिस रास्ते कुमारपाल जाताथा उसी रास्ते पीछे पीछे राजा जयसिंहकी फौज उस पकडने वास्ते आरहीथी

देखकर कुमारपाल घबराया, किसी दयालु जमीनदारने बेरीके पत्तोंमें उसे छिपाकर रखा, सत्य कहा है महात्मा भर्तृहरिने "वने रणे शत्रुजलाऽग्निमध्ये, महार्णवे पर्वतमस्तके वा। सुप्तं प्रमत्तं विषमस्थितं वा, रक्षंति पुण्यानि पुराकृतानि ॥ कहींभी खबर न मिलने से राजपुरुष पीछे लोटे, राजा जयसिंहने निरास और दुःखी होकर ढंढेरा फिराया कि "जो शख्स कुमारपालकी खबर लावेगा, उसे मुहमांगा दान दिया जावेगा" इधर बेरीके कांटोंके लगनेसें कुमारपालके शरीरसें लोहीकी धाराओं चल रहीथी, पेट भूखाथा, पग थके हुए थे, परंतु "अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म्म शुभाऽशुभम्" इस वाक्य का सतत स्मरण करते हुए और जमीनदारका परम उपकार मानते हुए चौलुक्यवंशमणिने आगे चलना शुरु किया आपने वहांसें चलते हुए उस जमीनदारकों कहा "विना ही किसी स्वार्थके दूसरे ऊपर उपकार करनेवाले सज्जन थोडे हैं. और किये हुए उप-

कारकों नहीं भूलनेवाले उनसेंभी थोडे हैं" अवी मेरा वक्त खराब है. कवी दशा अछी आई तो तुमारे किये उपकारका वदला देउंगा यह कहकर दहिथलीतर्फ चल दिये और रस्तेमें विश्राम लेनेकों एक वृक्ष नीचे बैठे इतनेमें उस जगहपर एक चूहा अपने विलमेंसें रुपये निकालकर वाहेर रखताथा कुमारपाल एकाग्र दृष्टिसें देख रहाथा, चुहेने २१ रुपये वाहेर निकाले और देखकर खुशीसें नाचने लगा, वाद अतिहर्ष मना कर उस चुहेने रुपयोंकों अंदर रखना शुरु किया. एक रुपया लेकर अंदर गयाके भाविभूप (राजा) ने शेप रुपये उठा लिये. चूहेको रुपये नहीं नजर आनेसे इतना दुःख हुआ कि फौरन छाति फट जानेसें तडफ २ कर मरगया.

यह देखकर राजाने विचार किया की, अहो! अफसोस है... कि–धन जिनकों कुछ काममें नहीं आता उनसेंभी इसकी मूर्छा नही छूटती, इसमें अनादि कालका संस्कारही कारण है मेरे इस प्रमादसें

विचारे चूहेकी जान गई, यह बुरा हुआ, इस तरह दयालु कुमारपाल मनमें पश्चात्ताप करता हुआ आगे चला, रास्तेमें उसे कोई शाहुकारकी लडकी अपने पिताके घरतर्फ जाति हुई मिली, उससें कुच्छ भोजन प्राप्त हुआ, प्रसन्नतापूर्वक भोजन करके उससें पूछा वैन ! तुमारा और तुमारे पिता श्रीजीका नाम क्या है ?

जबावमें बाईने कहा कि, "उमरा" गामके प्रसिद्ध "देवसिंह" शेठकी मैं लडकी हुं, और मेरा नाम "श्रीदेवी" है—कुमारपालने श्रीदेवीकों कहा तुं आजसें मेरी धर्मवैन हुई और मेरे राज्य समयमें राज्यतिलक तेरे हाथसेंही कराउंगा—यह सुनकर श्रीदेवी खुशी मनाति अपने घर गई, और कुमारपाल दहिथलीमें पहुंचा, वहां आकर इसपर जयसिंहदेवके नौकरोंने घेरा डाला—उसवक्त कुमारपाल-सज्जन नाम कोई कुंभारके घरपर जाकर बोला भाई ! "मुझे मरतेकों बचाओ तुमारा इस भवमें और भवा-

न्तरमें भला होगा" सज्जनने उसे ईंटोंके आवेमें रखकर बचाया, कुमारपालने सज्जनको कहा तुमने मुझपर पूरा उपकार किया है, अभीतक राजा मेरे साथ वैर रखता है, इसलिये तुम मेरे परिवारको साथ लेकर अवंतिनगरीमें जाओ, और मैं वोसीरीब्राह्मणको साथ लेकर परदेश जाता हुं, सज्जनने इस बातको कबूल किया, कुमारपाल अपने परिवारकों अवंतितर्फ रवाना करके खुद वोसिरीको साथ लेकर कोई नगरतर्फ निकल पडा, और थोडेही अरसेमें खंभात आ पहुंचा—नगरके, बाहेर श्रीहेमचंद्रसूरीश्वर जैनाचार्य मिले, वह उसको अपने उपाश्रय लेगये, और उदयन मंत्रीको सपुर्द किया.

कुमारपालने सूरिजीकों उदयनमंत्रीवास्ते पूछा, कि यह शखस कौण है ? सूरिजीने कहा इनका नाम "उदयन" है, यह मूल मारवाड देशके रहीस हैं, बडे भाग्यशाली धर्मी हैं, राजा सिद्धराजने इनकों यहांके मंत्री बनाये हुए हैं ॥ अब कुमारपालने दुः-

खोंसे कायर होकर पूछा महाराज! कबी मुझेभी सुख मिलेगा? सूरिजीने निमित्त देखकर कहा तुम घबराओं नहीं, तुमारा दुःखका समय गया समझो, निश्चय तुमकों ११९९ मार्गशीर्ष वदि (४) रविवारके दिन पुष्य नक्षत्रमें दिनके तीसरे पहेर राज्य मिलेगा. यदि ऐसा न हुआ तो हम निमित्त देखना छोड देंगे! इस वचनकों तुमने दिव्य वाक्य समझना, इस विषयका सब हाल लिख कर कुमारपाल और उदयनको देदिया, कुमारपाल नम्र होकर बोला साहेब! यदि मुझे राज्य मिला तो मैं वह राज्य आपको भेट करके आपकी निरंतर सेवा करुंगा.

सूरिजी बोले हमें राज्यसें कुछ प्रयोजन नहीं है, तुमकों राज्य मिले तो जिनधर्मकी प्रभावना करनी,

केईएक दिनोंतक कुमारपाल उदयनके घरमें रहा, उधर जयसिंहदेवकोंभी यह खबर पहुंची, तो उसने अपनी फौज इसकों मारने वास्ते भेजी, कुमारपाल भयभीत होकर सूरिजीके पास आया, और बोला

महाराज! मैं शरणागत हुं, मेरी रक्षा करो. दयालु आचार्यनेभी मनमें दया लाकर गुप्त रीतीसें उसे पुस्तकोंके भंडारमें रखा.

शहरमें कुमारपालकी तालायश होनेलगी, फिरते फिरते राजाके नौकर उपाश्रयमें भी आये, सूरिजीसे कुमारपालकी खबर पूछी तब सूरिजीने अवसरोचित उनको योग्य जवाब देकर निकाल दिया, उनके चलेजाने बाद कुमारपालको पास बुलाकर सूरिजीने कहा तुमारा विघ्न टला समझो अब थोडे-दिनोंमें तुमको खूब सुख मिलेगा, कुमारपाल हाथ जोडकर बोला महाराज! आपके दर्शन हुए तबसेही अष्टसिद्धि और नवनिधिकी प्राप्ति हुई समझता हूं, आपकी चरणसेवा मुझे निरंतर मिले इससेही मेरा कल्याण है आपकी कृपा है तो सर्वत्र निर्भय हूं— "यं पालयंति वितताननया हि नित्यं, किं पीड्यते विषधरैः स कदाचनापि"!

थोडे दिनोंके बाद उदयन मंत्रीने रास्तेका खर्च

देकर कुमारपालकों वहांसे विदा किया क्योंकि एक ठिकाणे रहनेलायक वक्त नहीं था, कुमारपाल फिरता फिरता वडौदे आया और एक वनीयेकी दुकानसें खानेको चणे मांगे वनियेनें कहा "पहले पैसे दो पीछे चणे दूंगा." कुमारपालको गुस्सा आया, और म्यानमेंसे तलवार खेंची, वनियेके होश उडगये, और बोला ठाकुर साहेब! यह सब चणे आपकेही हैं मरजीमें आवे उतने ले लीजिये—सत्य कहाहै "ईसा पैगंबर मूसा पैगंबर दंडा सबका पगंदर." कुमारपाल उसकी नम्रतासे शांत हुआ, वहांसे चलकर थोडे अरसेमें भरुच पहुंचा वहां कोई ज्योतिषीकों मिला, उसे प्रणाम करके पूछा महाराज! मेरा शुभदिन कब आवेगा? उस वक्त एक काली चिडी (दुर्गा) मुनिसुव्रतस्वामीके मंदिरके ध्वजादंड और कलश उपर बैठकर आनंदसें कुछ खाती और बोलतीथी, निमित्तीयेने उसका शकुन देखकर कहा जिनेश्वर—देवकी भक्तिके प्रभावसें थोडेही अरसेमें तुमारा

महाउदय होगा, वहांसे चलकर कुमारपाल कोलापुर पहुंचा–वहां एक "सर्वार्थसिद्ध" नाम योगी रहता था, जो कि विद्या और मंत्रोंके प्रयोगोंकों अछीतरहसें जानता था, कुमारपालने उसकी भली प्रकारसे सेवा की प्रसन्नहोकर योगीने उसे राज्यप्राप्ति और इच्छित धनप्राप्ति करनेवाले (२) मंत्र दिये, पहले मंत्रके साधनमें बहुत भी विघ्नथे तो भी सत्ववान् कुमारपालने साधन करना प्रारंभ किया, काली चौदसकी रातकों श्मशानमें मृतककी छातिउपर अग्निका कुंड जलाया, और खुद उसकी कमर उपर बैठकर होम करने लगा, इतनेमें उस क्षेत्रका मालिक देवता भयानक रूपकों धारनकरके कुमारपालके सामने आकर बोला, अरे मूर्ख! मुझे बलिदान दिये विना तुं अपना काम कैसे करेगा? इतना उसके कहनेपरभी कुमारपालने मनमें जरा मात्र खौफ न खाया और होमकी क्रिया जारी रखी, इतनेमेंही महालक्ष्मीदेवी प्रत्यक्ष होकर बोली हे धीर! मैं तुझे

गुजरातका संपूर्ण राज्य देती हूं परंतु यह तेरा मनोरथ पांच वर्ष पीछे फलेगा, यह सुनकर कुमारपाल अपना कार्य सिद्ध हुआ समझता हुआ योगीकों नमस्कार करके कल्याण कोरक देशके कांतिपुर नगरमें गया; वहां कुछ दिन ठहरकर अगाडी चला और कोलंब पट्टणकी सीमामें पहुचा, वहांके राजाकों महालक्ष्मी देवीने ऐसा स्वप्न दिया था कि, "भविष्यमें गुजरातके राज्यका मालिक होनेवाला महापुरुष तुमारे राज्यमें आवेगा उसका तुमने सत्कार करना," कोलंब राजाके नौकरोंने इसे देखा, और अपने स्वामीकेपास लेगये. कोलंबपतिने कुमारपालकों अपने आधे आसन उपर बैठाया, और महालक्ष्मीका कथन सविस्तर सुनाकर कहा—आप यह राज्य स्वीकार करें, मैं आपकी सेवा करूंगा. कुमारपालने कहा "आपके राज्यपर मैं अपनी सत्ता

"कांचि" के नामसें प्रसिद्ध एक शहर.

चलाऊं यह अनीति है, इस वास्ते यह काम करना मुझे सर्वथा अनुचित है, आपकी मेहरबानीकों मैं राज्यसेंभी ज्यादा मानता हूं-तो भी कोलंबराजाने कुमारपालकी यादगिरीवास्ते कुमारपालेश्वर नामका एक विशाल प्रासाद (मंदिर) बनवाया, और अपने राज्यमें रुपयोंपर कुमारपालका नाम मशहूर किया, स्नेही स्नेहके वास्ते, जितना करे थोडा है, कुमारपाल वहांसें "प्रतिष्ठानपुर" वगैरह अनेक नगरोंकों देखता हुआ मालवदेशमें पहुंचा; और उज्जयनीमें जाकर अपने स्वजनोंकों मिला, एकदिन नगर बाहर फिरता हुआ कुमारपाल कुंडलेश्वरके मंदिरमें गया और वहांपर विराजमान श्रीपार्श्वनाथकी प्रतिमाके दर्शन कर आत्माको कृतार्थ मानता हुआ चारो तर्फ

---

१ आजकाल पैठन नामसें दक्षिणमें मशहूर नगर।

२ आजकाल अवंतिपार्श्वनाथके नामसें प्रसिद्ध उज्जैनसें बाहिर थोडे फांसलेपर एक मंदिर।

ख्यालसें देखने लगा, इतनेमें एक शिलालेख उसके देखनेमें आया, जिसमें यह गाथा लिखी हुईथी.

(१०००) (१००) (९९)

पुण्णे वाससहस्से सयाण वरिसाण नवनवई कलिए।
होहि कुमरनहिंदो तुह विक्कमराय सारिच्छो ॥ १ ॥

भावार्थ ११९९ वर्षव्यतीतहोनेपर हे विक्रमराज! तुमारे जैसा कुमारपाल नामका प्रतापी राजा होगा, इस गाथामें अपना नाम और संवत् देखकर राजाकों शंका पैदा हुई, और वहां रहे हुए कोई वृद्ध विद्वानकों पूछा यह शिलालेख किसने कब लिखा है? जवाबमें वृद्धने कहा "पूर्वकालमें यहां जैनमतके धुरंधर आचार्य सिद्धसेन दिवाकर आयेथे, उन्होनें अनेक प्रकारकी विद्या और चमत्कारोंसें राजा विक्रमकों परम जैनधर्मी बनायाथा, उनकी बनाई हुई ३२ बत्तीसीयोंसें कुंड़लेश्वर महादेवके लिंगके फट जानेसे यह श्रीपार्श्वनाथकी प्रतिमा प्रकट हुई थी, उनसें विक्रमराजाने ऐसा प्रश्न पूछाथा कि, मेरे पीछे

मेरे जैसा कोई जैनराजा होगा या नहीं? उस प्रश्नके उत्तरमें श्रीसिद्धसेन दिवाकरनें यह गाथा कहीथी. और राजाने शिलालेख करवाकर यहां लगवाया था इस बातको सुनकर कुमारपालको बडा हर्ष हुआ और बोला कि–धन्य है जैनाचार्योंके ज्ञानको और धन्य है इनके सत्यवक्तृत्वकों. थोडे दिन उज्जयनीमें ठहरकर अपनी स्त्री "भोपलदेवी" और मित्र ब्राह्मण जिसका नाम वोसिरी था उनकों साथ लेकर कुमारपाल दशपुर[1] नगरमें आया, नगरके बाहिर उद्यानमें नासिका उपर नेत्रटिकाकर पद्मासन लगाकर बैठा हुआ शांतवृत्तिवाला कोई योगी उनकी नज़र पड़ा उसे देखकर शांतचित्तसें कुमारपाल विचारने लगा कि दुनियामें अपने मनोरथोंको पूराकरनेवास्ते तालाव, नदी, वावडी, वगीचे वगैरहमें खुशीयोंको मनाने-

---

१ आजकाल "मंदसोर" के नामसें मशहूर आर. एम. रेल्वे पर एक शहर।

वाले मनुष्य तो ठेकाणे ठेकाणे देखे जाते हैं, परंतु जो महात्मा पर्वतोंकी गुफाओंमें अथवा जंगलोंमें रहकर उत्कृष्ट ज्योतिस्वरूपका ध्यान करते हैं, जिनके आनंदाश्रु जलको झरनोंका जल समझकर निर्भय जंगली पशु पीतेहैं, ऐसे महापुरुषोंकाही दर्शन दुर्लभ है, धन्यहै इनके जन्म और जीवितको! इतनेमें योगीने भी अपनी समाधी खोली, तो कुमारपालने हर्षसें नमस्कार करके पूछा—योगीराज! मैं स्नान दान ध्यान और ज्ञान इन (४) पदार्थोंका स्वरूप जाणना चाहता हूं आप कृपाकरके समझावें तो आपका महान् उपकार होगा. योगीने कहा मनका मल दूर करना यह परमस्नान है, जीवको निर्भय करना यह परमदान है, तत्वपदार्थका यथार्थ बोध होना यहि ज्ञान है, और मनको सर्वथा विषयोंसें विरक्त रखना यहही ध्यान है, यह सुनकर चरित्रनायक वडा खुश हुआ, वहांसें चलकर चित्रकूट (चितोड) पहुंचा, और वहां रामचंद्र नाम एक जैन मुनिकी मुलाकात होनेसें उससे चित्र-

कूटकी उत्पत्ति पूछी, मुनिने कहा—यहां पूर्वकालमें चित्रांगदराजा राज्य करताथा, उसने इस "कूट" नामा पर्वत उपर किला बंधाना शुरू किया था, दिनमें जितना बनाया जाता था रातकों गिरजाता था, (६) महिनेतक मेहनत की परंतु काम कुछ न बना, कूट पर्वतके अधिष्ठायकने कहा तुमारा यह काम बनना मुश्किल है, राजाने कहा "काम करूंगा अथवा प्राण देऊंगा" परंतु उद्यम तो नही छोडुंगा, कूटदेव बोला तुम अगर मेरा नाम कायम रखो तो तुमारा काम सिद्ध करूं, राजाने मंजूर किया, किला तयार हुआ. मंत्रीयोंने इस किलेका नाम "चित्रकूट" रखा, और इसनामसेंही नगर आबाद किया, यहां (१४) हजार क्रोडपति रहते थे, लक्षाधिपतियोंकों रहनेकी जगह उपर नहीं मिली इसलिये उनके रहनेवास्ते राजा चित्रांगदकी आज्ञासें नीचे तलाटी उपर अनेक मकान तयार किये गये, चित्रांगद राजाने यहां बहुत अरसे तक राज्य किया, इसके पीछे राजाकी

विश्वासपात्र "चर्चरिका" वेश्याके फूटकर दुसरे राजाकों मिलजानेसें यहांका राज्य कान्यकुब्ज देशके "शंभशील" राजाके हाथमें गया, और राजा चित्रांगद इसी कारणसें कुएमें पडकर मर गया, चित्रकूट (चितोड) सें निकला हुआ कुमारपाल सुकोशल मुनिकी गुफाकों देखकर सुकोशल[1] मुनिकी प्रतिमाकों नमस्कार कर कणौज पहुंचा, वहां नगर बाहर बहुतसे आंम देखनेमें आये. कुमारपालने कोईसें कारण पूछा तो उसने जवाब दिया कि यहां आंमके वृक्षोंपर राजाका टेक्स नहीहै, यहसुनकर कुमारपालने प्रतिज्ञा की—कि राजा होकर मैं भी इसी तरह करूंगा, बाद वहांसे चलकर भविष्यका गुजरपति कुमारपाल काशी पहुंचा वहां एक शाहुकारसें मुलाकात हुई. दूसरे दिन उसके घरकों राजाके नौकर लूट रहे थे और स्त्री मुक्तकंठ रुदन कर रहीथी देखकर कुमारपालने पूछा

---

१ जैन में प्रसिद्ध एक महात्मा.

कि आज यहां क्या उपद्रव हो रहा है? जवाबमें मालुम हुआ कि यह शाहुकार अकस्मात् मर गया है, इसके पुत्र नहीं था, इसवास्ते अपुत्रीयेका धन समझ कर राजपुरुष लूट रहे है. कुमारपालने विचार किया कि, पति और पुत्र दोनोंके अभावमें यह स्त्रियें इसधनसेंही अपनी जिंदगी गुजार सक्ति थी, उसेभी अगर राजाने लूटलिया है तो यह बिचारी कैसे जिंदगी बीतावेंगी? ऐसा करना दयालु राजाओंका काम नही हैं, मैं जब राजा होउंगा तब ऐसा अनीतिका धन सर्वथा न लेउंगा यह निश्चयकर और थोडा अरसा वहांपर गुजार कर कुमारपाल पटणेमे पहुंचा, वहांकी स्थिति आज वैराग्यकों पैदा करती थी, इस शहरमें नव नंदोंका समय बडाही उत्कृष्ट था; कुछ अरसा वहांपर रहके कुमारपालने राज्यगृहीमें जाकर मुकाम किया, वहांपर महापुरुष शालिभद्र और श्रेणीकपुत्र अभयकुमार, धनाशेठ, पुनियाश्रावक वगैरहकी आश्चर्यकारि वातों सुनता हुआ,

कुच्छ अरसा ठहरा, और पीछे अगाडी चला, जाते जाते कोई एक ऐसा स्थान आया कि, जहां सर्पका राज्यथा, कुमारपालने एक वृद्ध पुरुपकों पूछा, तो उसने जवाब दिया कि इस नगरका नाम "नागेंद्र-पत्तन" है, इसको नागकुमारने वसाया हैं, इसका सविस्तर वृत्तान्त ऐसा है कि, "यहां दानेश्वरी, भोगी और विवेकी, श्रीकान्त नाम राजा राज्य करताथा—मगर उसमें एक दुर्गुण था कि—थोडीथोडी वातमें गुस्से हो जाता था, एक दिन महलमें घूमते हुए ख्याल चुकजानेसें माथेमें थंभा लगनेसें आर्त्तध्यानमें मर गया और मरकर सर्प हुआ, भंडारपर मालिक होकर बैठ जानेसें कोई दूसरेकों राज्य लेने नही देताथा, लोकोने सोचा कि, इसकोही राजा रहेने दो, उस दिनसें आजतक यही प्रथा चली आती है" थोडे अरसेमें शेप दर्शनीय देशकी यात्रा समाप्त करके कुमारपाल पाटण पहुंचा ॥

कृष्णदेवकों खबर पडनेसें उसने सामने आकर

सन्मानपूर्वक नगर प्रवेश कराया. एक दिन कुमारपाल स्नान करताथा, इतनेमें उसके मस्तक ऊपर बैठ कर काली चीडीने शुभसूचक आवाज किया, तब कोई निमित्तियेने कहा (७) दिनमें तुमकों राज्य मिलेगा, यह सुन कर कुपारपाल वडा खुश हुआ और निमित्तियेकों दान सनमान देकर विदाय किया.

इस समय सिद्धराज जयसिंहदेवका अंतकाल हो चुकाथा, इससें राज्यगादि देनेके वास्ते सामंत और मंत्री लोगोंने कृश्नदेवकों हुकम किया कि—इस राज्यके हकदारोंकों हमारे पास हाजर करो, कृश्नदेवने भी कुमारपालको (२) भाईयों सहित सभामें लाकर खडा किया, उनमेंसें एक कुमारकों आगे किया तब वह मंत्रियोंके पास आकर हाथ जोड आधीनतासें बोला—'मुझे क्या हुकम है?' मंत्रियोंने उसे कमजोर जानकर निकाल दिया, दूसरेको भेजा तो वह मंत्रीयोंकों देखकर घबराया शरीरसें कपडे

गिरजानेपर भी उसे खबर न रही, मंत्रीयोंने उसेभी बिलकुल नापसंद किया, उनके पीछे कुमारपालको भेजा उसने मंत्रीयोंसें कुछभी खौफ न खाया, बलकि निर्भय होकर प्रसन्न मनसें राज्य गादिपर बैठगया; इसकी इस चेष्टाकों देखकर मंत्रीयोंने अतिशय हर्ष मनाया, बंदीलोगोंने खुश होकर गुण गाया, और मंत्री सामंतोने महोत्सवपूर्वक विक्रम संवत ११९९ मगसर वदि (४) पुष्य नक्षत्र मीनलग्न आदि उच्च ग्रहोंका योग आनेपर कुमारपालका राज्याभिषेक किया ॥

इस वक्त महाराज कुमारपालकी उमर ५० वर्ष की थी, इस खुशीके समयमें स्त्रियोंने धवल मंगल गाये, मंत्री सामंतलोगोंने हाथी घोडे मोति माणिक्य भेट किये.

छत्र और चामरोंके होते हुए, लोगोंके जयजयकार करते हुए, सर्व ऋद्धि और परिवारसहित

कुमारपाल भूपालने पट्टहाथीपर सवार होकर राज-महेलोंमें प्रवेश किया.

राज्यतिलक श्रीदेवीके हाथसें कराया गया उदयनको मुख्य मंत्री बनाया। जिस किसीने पहली अवस्थामें जो कुछ उपकार किया था, उन सबको बुला कर यथायोग्य सन्मानित किये। उदयनके पुत्र वागभट्टको नायब दीवान बनाया। आलिंग कुंभारको चित्रकूट (चित्तोड) तावेके ७०० गामोंका मालिक बनाया, उसीके वंशज आजकाल सगरा राजपूतके नामसें मशहूर हैं। जिसने वेरिके कांटोंमें छिपाकरके रखा था उसको खास अंगरक्षक बनाया। वोसिरि ब्राह्मण जो मालवेकी मुसाफरीमें साथ था उसे लाटदेश बक्षीस किया। श्रीदेवीको धोलका दिया! चणे देनेवाले वनीयेको वडोदरा दिया, इस तरहसें सर्व उपकारी लोकोंको बुलाया, परंतु धर्मका अंतराय होनेसें मुख्य उपकारी हेमचंद्र सूरिजीको याद न किया!! इधर हेमचंद्रसूरिजीने भी जब

कुमारपालको राज्य मिला सुना, तो करणावतीसें विहार करके पाटण पधारे! उदयनमंत्रीने प्रवेश महोत्सव किया, सूरिजीने मंत्रीसें पूछा कि—राजा कभी मुझेभी याद करता है, कि नही? मंत्रीने कहा महाराज! कबी नहीं। सूरिजीने कहा जीवोंको सुखमें धर्म और धर्मके उपदेष्टा याद मुश्किलही आते हैं, तोभी आज उनको कहना कि नवी रानीके मकानमें न जावें। मंत्रीने वैसेही जाकर कहा राजा नहीं गया, रातकों उस मकानपर विजली पडी,

---

१. *Page 18*, Bombay Gazetter Vol. I, Part I.

Devsuri who was living and preaching in the Jain Temple of Arishtanemi at कर्णावती, *that is modern Ahmedabad* (हालनुं अमदावाद), was there visited by Kumudachandra. P. 170.

Karna had 3 ministers मुञ्जल, शान्तु, उदय. उदय was a Shrimâli Vânia of Marwar. शान्तु built a Jain temple called शान्तुवसहि and उदय built at कर्णावती a large temple called उदयवराह containing 72 images of तीर्थंकरs.

मकान टूट पडनेसें रानी मरगई राजानें इस बातकों सुनकर बडा आश्चर्य मनाया; और मंत्रीको पूछा तुमकों यह खबर पहलेही किसने कही ? मंत्री बोला महाराज ! हमारे गुरुमहाराज श्रीहेमचंद्रसूरिजी तीनों कालकी बातें जाननेवाले अद्भुतज्ञानी हैं उन्होने मुझसें यह वृत्तान्त कहा था। राजा प्रसन्न होकर बोला क्या-हेमचंद्रसूरिजी यहां पधारे हैं ? मंत्रीने कहा जी हां। कई दिन हुए.

राजा—तो फिर हमकों खबर क्यों नहीं दी ?

मंत्री-महाराज अबभी क्या बिगडा है ?

राजा-अच्छा कल हमारे पास उनकों जरूर लाना।

मंत्रीने हेमचंद्रसूरिको आकर सर्व वृत्तान्त कह सुनाया, और प्रार्थना की कि आप-सुबह राजसभामें अवश्य पधारें, आपके वहां पधारनेसें धर्मकी उन्नति होगी। सूरिजीने भी मंत्रीके वचनको स्वीकार किया। दूसरे दिन योग्य शिष्यमंडलीकों साथ

राजाकी इच्छानुसार प्रतिदिन राजसभामें आकर धर्मोपदेश सुनाने लगे। "परोपकाराय सतां विभूतयः" सत् पुरुषोंकी विभूतियें जगत्के उपकारकेही वास्ते होती हैं। सूरिजीके उपदेशसें राजाकी मनोवृत्ति और नीति धर्मसें वासित होने लगी, उसने दिनके आठ विभागोंमें सर्व कार्योंको नियत समयमें करनेका दृढ विचार करलिया। प्रथमविभागमें खर्चलायक धनका विचार (१)। दूसरेमें लोगोंकी रक्षाके उपायका विचार (२)। तीसरेमें देवपूजा करनी (३)। चौथेमें खजानेका हिसाब लेना (४)। पांचमेमें गुफिया नोंकरोंको परदेश भेजना (५)। छठेमें सैर करने जाना (६)। सातमेमें हाथी घोडे शस्त्र वगैरहकी हिफाजत (रक्षा) करनी (७)। आठमेमें दूसरे राजाओंको वश करनेवास्ते नवी फौज तयार करनेके अनुकूल उपाय ढूंढने (८)। रात्रिके ९ हिस्सोंमेंसे—प्रामाणिक पुरुषोंसें वातचीत करनी (१) शास्त्रका स्मर्ण करना (२) वाजोंका

सुनना (३) सोना (४) ध्यान करना (५) मंत्र-जापकरना (६) ब्राह्मणोंका पोषण (७) और वैद्योंकी मुलाकात (९)।

कुमारपाल हरएक काम हुशीयारीसें खुदही करता था, इसी सबब वृद्ध मंत्री लोगोंकी पूछ थोडी होनेसे एकदिन उन कमनसीबोंने राजाके घात करनेका निश्चय किया, परंतु राजाकों मालुम होनेसें फौरन उन सबकों यमराजाकी मुलाकात करा दी, और पूर्व-जन्मके पुन्यसें निष्कंटक राज्य पालने लगा, इधर सिंधु नदिके पश्चिम किनारे उपर "पद्मपुर" नगरमें "पद्म-राजा" राज्य करता था, उसकी लडकी पद्मिनी स्त्रीके लक्षणोंवाली थी, नाम उसका "पद्मावती" था, वह कुमारपालपर अत्यंत रागिनी थी, उसके पिताने उसे (१६) वारांगणा सात क्रोड रुपैये और (७००) सिंधी घोडे देकर पाटणभेजी, और राजा कुमारपालके साथ विवाह करादिया, इस वातसें क्रुद्ध होकर कोई मूल-देव नामका राजा कुमारपालसें लडनेकों आया, मगर

हार खाकर पीछे गया! बाद राजा दिग्विजय करनेको निकला पूर्वदिशामें कुरू, कुशावर्त, पांचाल, दशार्ण, विदेह, और मगध, आदि। उत्तरमें काश्मीर, जालंधर, सपादलक्षपर्वत पर्यंत देश। दक्षिणमें लाट, महाराष्ट्र और तैलिंगादि जनपद। पश्चिममें सुराष्ट्र, ब्राह्मण, वाहक, पंचनद, सिंधु सोवीर वगैरह देशोंको स्वाधीन करके ११०००० घोडा, ११०० हाथी ५००० रथ, (७२) सामंत, १८०००० पयादोंकी सेना लेकर पाटणमें वापिस आया और सुखपूर्वक राज्य करने लगा। एकदफा राजा सभामें बैठा था उसवक्त कुंकण देशके मल्लिकार्जुन राजाके बंदीने आकर अपने राजाकी प्रशंसा करते हुए कहा "सूरोंमें सूर और वीरोंमें प्रधान वीर "राजापितामह" मल्लिकार्जुन जगत्में जयवंत रहो। उसकी जुवानसें "राजापितामह" का विरुद सुनकर उसकेसाथ युद्ध करनेवास्ते कुमारपालने उदयनके पुत्र आम्रभट कों सैन्य देकर भेजा! आम्रभट्टने मल्लिकार्जुनकों मारकर उसके

राज्यमें कुमारपालकी आज्ञा प्रवर्त्ताई। स्वामीकी आज्ञाके आराधनवास्ते योद्धे लोग सर्व शक्तिका उपयोग करते हैं। मल्लिकार्जुनका मस्तक सोनेसें मढाकर और उसके राज्यकी सर्वसार वस्तुएँ लाकर कुमारपालको भेट की। कुमारपालने अत्यंत प्रसन्नतासें आम्रभट्टकोंही "राजपितामह" का विरुद दिया और बहुतसा धन इनाम दिया। आम्रभट्टने वह सब रुपया उस वक्त याचकोंको दान कर दिया। यह बात जब राजाने सुनी तब मंत्रीकों बुलाया और खफा होकर बोला— क्या तूं मुझसेभी ज्यादा महत्त्व रखता है जो इतना दान देता है? मंत्री बोला हां साहेब! मैं आपसें ज्यादाही महत्त्व रखता हूं। राजा बोला कैसे? मंत्रीने कहा स्वामिन्! आपके पिताजी केवल (१२) गामके मालिक थे, और मेरे पिता आप तो (१८) देशके मालिक हैं। सुनकर राजा बहुत खुश हुआ और मंत्री बहुत कुछ इनाम पाकर विदा हुआ। कुमारपाल महा-

राजकी एक बहिन जिसका नाम "देवलदेवी" था, शाकंभरी[1]के अरणोज राजासें विवाही हुई थी, उसके सामने अरणोजने हांसीसें जैन मुनियोंकों दुर्वचन कहा। सुनकर देवलदेवीने कहा स्वामीनाथ! आप मेरे शिरके ताज हैं, मालिक हैं, परंतु मेरे सामने आपको मेरे धर्मगुरूओंकों दुर्वचन नही बोलना चाहिए, दुसरी सर्व आज्ञा मुझे मान्य है— परंतु धर्मका राग मुझसें नहीं छूटेगा। इतना कहने-परभी अरणोराजने कुछ खयाल नही किया, बलकि ज्यादा बकने लगा। तब देवलदेवीने कहा अरे मूर्ख!! जंगली!! तूं पापसे तो नहीं डरता परंतु मेरे भाई कुमारपालसें भी नही डरता!!! इस बातकों सुनकर क्रूरप्रकृतिके अरणोराजने गुस्सेमें आकर स्त्रीकों लात मारके कहा "जा निकल जा मेरे घरसें और तेरे भाइकों जाकर जो कहना हो बेशक कह मुझे कुमारपालने जो करना हो सो करले!! मैं उसके

१ अजमेरके पास "सांभर" नाम का गाम।

बापकाभी भय नहीं रखता। इस तिरस्कारसें अति दुःखित हुई हुई विचारी देवलदेवी पाटण आई और कुमारपालके पास जाकर सर्व वृत्तान्त कहकर रोई, कुमारपालभी जैन मुनियों उपर पूरा प्रेम रखताथा, बहिनकी जुवानी इस वृत्तान्तकों सुन कर उसने अरणोराजउपर चढाई की, और उससें युद्ध करना शुरु किया! अरणोराज बलवानभी था तोभी "यत्र धर्मो जयस्तत्र" कुमारपालने उसे पकड कर कहा—बोल तेरा क्या हाल करूं? अरणोराज बोला मैं आजसें तुमारा शरणागत हूं, मरजी आवेतो मारो मरजी आवेतो रखो! कुमारपालने उसे जैन मुनियोंकी सेवा करनी कबूल करा कर छोड दिया, और पीछे लोटते हुए चंद्रावतीके[1] राजा विक्रमसिंहकों जोकि

---

१ यह गाम आबु पर्वतके पास आजकालभी इसीही नामसें मशहूर है उसवक्त यहां सामंतसिंह राजा राज्य करता था उसने शाकंवरी (सांबर) की सवारीमें जाते हुए राजाकों चंद्रावतीमें ठहराया और भोजन देनेकी प्रार्थना की राजाने मंत्री सामंतोंकों कुछ शिक्षा देकर भोजन करनेको भेजा और खुद अपने तंबुमें ही

वडा धोखेबाज था, युद्धमें जीता, और उसे साथमें पाटण लाकर पिंजरेमें डाल दिया, और उसके राज्यपर उसके मंत्री यशोधवलकों बैठा दिया, एक दिन राजाने मंत्रीयोंकों पूछा कि सिद्धराज मेरे जैसा था कि अधिक गुणवाला ? मंत्री बोले महाराज ! सिद्धराजमें (९८) गुण थे परंतु "परस्त्रीलंपटता और संग्राममें कायरता" यह दो दोष थे तुमारे में कृपणतादि (९८) दोष हैं, परंतु 'संग्रामसूरता और परस्त्री-सहोदरता' इन गुणोंसें वे सब दोष ढके गये हैं। सिद्धराजसें आपकी कीर्ति अधिक बढेगी। एक

रहे आखीर मंत्रिमंडलके तलायश करनेपर मालूम हुआ कि सामंतसिंहने "लाख" का मकान तयार कराया हुआ था उसमें भोजनके वहाने राजा कुमारपालकों बंदकर आग लगाना चाहता था परंतु राजा विचारचतुर था कैसे फसता ? कुमारपाल जैसा बुद्धिमान् था वैसाही गंभीर भी था इसलिये उसने उसवक्त कुछ न कहकर "अरणोराज" का पराजय कर आते हुए "सामंतसिंह" कों युद्ध में पराजित करके काष्ठके पिंजरेमें डालकर उसे वैसी ही हालतमें साथ लेकर पाटण में प्रवेश किया ।

दिन एक कविने आकर राजाकी स्तवना की। उसमें राजाको मेघकी उपमा दी। राजाने खुशी होकर कहा राजाकों मेघकी "उपम्या" देनी युक्त है, 'उपम्या' इस शब्दकों सुनकर कपर्दि मंत्रीने शरमाकर मुह नीचा करलिया राजाने पुच्छा मंत्रिराज ! क्यों क्या कारण है जो आपने मुह नीचा करलिया ? मंत्रीने कहा महाराज! आप व्याकरण नहीं पढे इसवास्ते आपको शुद्धाशुद्ध शब्दकी खबर नहीं, देशान्तरोंमें आपकी अपकीर्ति होगी!! आपकी अपकीर्ति वह हमारीही अपकीर्ति है, इसलिए शरमसे मुंह नीचा करना पडता है। इस बातको सुनकर राजा दिलगीर होकर सुरि श्रीहेमचंद्रजीके पास गया, और जाकर सब बात सुनाई। सुरिजीने सिद्धसारस्वत मंत्रका आराधन बताया, उससें सरस्वती देवीकों प्रसन्न करके एक वर्षमें व्याकरण काव्यादिको पढकर राजाने कवियोंसें 'विचार चतुर्मुख' और 'कवि बांधव' बिरुद प्राप्त किया।

पाटणमें संगीत कला.

एक समय राजा सभामें वैठा था, इतनेमें कोई परदेशीने आकर पुकार किया कि, महाराज ! मुझे लूट लिया २ ! ! राजा वोला किसने ? परदेशी वोला, जिसके गलेमें सोनेकी जंजीर है ऐसे हरिणने । राजाने इस वातकों सुनकर अनुमान किया कि यह कोई गवैया है, और अपनी कुशलता वतानेको आया है ! इधर राजाके पास "सोल्हाक" नामा गवैया था उसे वुलाकर हुकम किया कि तुम जंगलमें जाओ और वहां गायन करके हरिणकों पकड लाओ। सोल्हाकने वनमें जाकर गायन किया, उसे सुनकर वनमृग आसक्त हो गया। उसे साथमें लेकर सोल्हाक सभामें आया और गवैयेकी जंजीर उसके गलेमेंसे निकाल कर उसको देदी। कुमारपालने सोल्हाकको पूच्छा कि सर्वोत्तम गायन कब हो शक्ता है ? उसने कहा सूके लकडेको हरा कर देवे.

तव। राजा बोला—ऐसा कौन कर सक्ता है? गवैयेने कहा—आपका सेवक मैं। राजाने कहा—अच्छा कर बताओ। गवैयेने तत्काल आबुके जंगलसे विरहकी लकडी मंगाई, उसे मट्टीमें जमाकर मल्हार राग गाकर वरसाद वरसाया और उस लकडेको हरा किया। यह देखकर परदेशी गवैया लज्जातुर हुआ और राजा कुमारपालकी स्तुति करके राजासें योग्य दान लेकर स्वस्थानपर चला गया! राजाने एक दिन सूरिजीसें संगीतका महिमा पूछा, तब सूरीजीने फरमाया राजन्! संसारमें संगीतभी अद्वितीय पदार्थ हे!

सुखिनि सुखनिषेको दुःखितानां विनोदः,
श्रवणहृदयहारी मन्मथस्याग्रदूतः।
नवनवरसकर्ता वल्लभः कामिनीनां,
जयति जगति नादः पंचमस्तूपवेदः ॥ १ ॥

संगीत स्वरमय होता है। स्वरोंके नाम यह हैं, षड्ज १ ऋषभ २ गांधार ३ मध्यम ४ पंचम ५ धैवत

युधिष्ठिर, विक्रम, भोज आदिकी तरह मेरी कीर्तिभी युगांततक कायम रहे। सूरिजीने जवाब दिया कि– "मनुष्यकी कीर्तिके दीर्घ काल रहनेमें दो कारण हैं, एक तो धनसें सर्व जीवोंकों अनृण करके अपना संवत्सर चलाना, और दूसरा कोई देवका उत्तमस्थान बनवाना। राजाने कहा 'साहेब! अपने नामके संवत् चलानेमें तो बहुत धनकी जरुरत है, सो इस वक्त मेरा सामर्थ्य नही है परंतु देवस्थानतो बंधा सक्ता हुं;' यह बात हो रही थी कि देवपुर पाटण (प्रभासपाटण) सें सोमेश्वरमहादेवके पुजारी आये, उन्होने कहा कि पृथ्वीनाथ! सोमेश्वरमहादेवका मंदिर जो कि काष्टका था समुद्रके पानीसे गिरने लगा है, आप धर्मात्मा उस प्रासादका उद्धार कराके जगत्में अखंड यशकों प्राप्त करें। यह सुनकर राजानें सूरिजीकी सलाह पूछी। तब सूरिजीने कहा धर्मी राजाओंका यह अवश्य कर्तव्यही है। सूरीश्वरने विशेषमें कहा कि शुभ कार्यके आरंभमें कुछ प्रियव-

स्तुका त्याग करना चाहिए, ता कि—वह काम शीघ्र होवे ! राजाने कहा मुझसे बन सके सो कहिये, करनेकों तयार हूं। सूरिजीने कहा सर्वोत्तम प्रतिज्ञातो यह है कि प्रासाद की समाप्ति तक ब्रह्मचर्य धारण करना, यदि वह न बने तो मदिरा मांस तो जरूर छोड देना चाहिए। राजाने गुरुसन्मुख प्रतिज्ञा की कि, कार्यकी समाप्तितक दोनोंही वस्तु मैं सेवन नहीं करूंगा। दो वर्षके बाद मंदिर तैयार होनेकी खबर आनेपर राजाने कहा मेरी प्रतिज्ञा पूरी हुई। सूरीजीने कहा बेशक मंदिर तैयार हो चुका है, परंतु जहांतक आपने स्वयं जाकर यात्रा नही की वहांतक यह नियम ज़रूर पालन करना चाहिये। राजा यात्राकों तैयार हुआ, इधर कोई ईर्षालु ब्राह्मणने आकर कहा महाराज ! हेमचंद्रने आपकों अपने फंदेमें फसाना चाहा है, इसवास्ते आप की हांमें हां मिलाते हैं, अंदरखाने यह हमारे धर्मके विरोधी हैं". सूरिजीके चित्तकी परीक्षावास्ते राजाने सूरिजीकों सोमेश्वर आनेकी

प्रार्थना की। तब सूरिजी बोले–इसमें आपकों कहनेकी खास जरूरत नहीं हम तयार हैं। जब आपका प्रयाण होवे हमकों कुछ दिन पहेली खबर दिलावें हम शत्रुंजयकी यात्रा करके सोमेश्वर पहुंचेंगे, यह कहकर सूरिजी शत्रुंजयतर्फ विहार कर गये, थोडे अरसेमें राजानेभी देवपुरपाटणतर्फ प्रयाण किया। कुच्छ दिनोंमें वहां जा पहुंचे। इधर सूरिजीभी शत्रुंजय और गिरनारकी यात्रा करके वहां आये। ब्राह्मणोंने राजासे कहा–महाराज! जैन लोक अपने तीर्थंकर के विना दूसरे देवकों नमस्कार नहीं करते। दूसरे दिन राजा सूरिजीकों बोला भगवन्! आप अगर उचित समझें तो शिवभगवान्कों नमस्कार करें! सूरिजीने कहा, इसमें क्या हरकत है? सुनिये–

"भवबीजांकुरजनना रागाद्या क्षयमुपागता यस्य।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरो जिनो वा नमस्तस्मै ॥१॥
यत्र तत्र समये यथा तथा, योसि सोऽस्य-

भिधया यया तया, वीतदोषकलुषः स
चेद् भवानेक एव भगवन्नमोऽस्तु ते" ॥ २ ॥

इत्यादि वाक्योंसें सूरिजीमहाराजने परमार्थसें वीतरागदेवकी ही स्तुति की! राजा अतिप्रसन्न हुआ। महादेवकी पूजापूर्वक, सोना चांदी मोती वगैरेह चढा करके, राजाने कहा भगवन्! सोमेश्वर-जैसा देव आप जैसा गुरु और मेरे जैसा तत्वजिज्ञासु यह योग पुन्यसें मिला है अब आप कोईभी प्रकारका पक्षपात न करके मुझे यथार्थ देवका स्वरूप समझावें। राजाकी यह प्रार्थना सुनकर सूरिजीने कहा–हे राजन्! शास्त्रसंबंधी वादकों किनारे रखो महादेव साक्षात् आकर तुमकों जो तत्त्व कहे उसको स्वीकार करो। यह कह कर सूरिजी राजाको साथ लेकर मंदिरमें गये। और आराधन करना शुरू किया। मध्यरात्रीके समय गंगा जिसमेंसे वह रही है ऐसी जटाको धारण किये हुए, चंद्रकलायुक्त त्रिनेत्रवाले महादेव, उस सोमेश्वरके लिंगमेंसे प्रकट

हुए ! सूरिजीनें राजासे कहा कि–यह–सामने शिव खडे हैं, आप इनसे तत्त्वका निर्णय करलेवें । महादेवको साक्षात् सामने खडे हुए देखकर राजाने प्रसन्न होकर अष्टांगनमस्कार किया । महादेवने आशीर्वाद देकर राजाकों कहा–हे चौलुक्य ! तुझे धन्यवाद है कि तुम तत्त्वके जाननेकी इच्छा रखते हो हें । राजन् ! पृथ्वीमें सर्वदेवोंके अवताररूप, परमब्रह्मका ध्यान करनेवाले, बालपणेसें संयमवान्, अपने और दूसरे मतके सिद्धांतकों भली प्रकारसें जाननेवाले यह हेमचंद्राचार्य तुझे तत्त्वका यथार्थ स्वरूप समझावेंगे । ऐसा कहकर शंकर अदृश्य होगये राजाकों बडा आनंद और आश्चर्य हुआ । श्रद्धापूर्वक हाथ जोडकर राजाने सूरिजीको प्रार्थना की कि भगवन् ! पृथ्वीतलमें आप सर्वोत्तम महर्षि हैं, सर्वोत्तम सत्यधर्मके उपदेष्टा हैं, और सर्वविद्याविशारद हैं; पहले आपने मुझे जीवितदान देकर मेरे इस लोकका हित किया था, अब धर्मोपदेशद्वारा परलोकका हितभी आपही करें ।

हेमचंद्रजीमहाराजने कहा–हे राजन्! अहिंसा—सर्व जीवोंकी रक्षा करना—यह धर्मका मूल है, और मांसभक्षणसें जीवदयारूप धर्मका सर्वथा नाश होता है। सर्व जीवोंको अपने आत्मसमान समझना यह मुख्य धर्म है, और इसीसेही आत्माका पारलौकिक हित होता है। इत्यादि उपदेश सुनकर राजाने हर्षपूर्वक देवके समक्ष मांसभक्षणका नियम किया। बाद महोत्सवपूर्वक खुशीयें मनाता हुआ राजा पाटण आया, और गुरुमुखसें उपदेशामृतका पान करने लगा। प्रतिदिन राजसभामें अनेक प्रकारसें वाद-विवाद करनेवाले सर्व मतानुयायी लोकोंके चित्तका सूरिजीने भली प्रकारसे समाधान किया, और कुमारपालके चित्तकोभी धर्मरागमें दृढ रंजित किया। राजाने जैन धर्मकों सर्वोत्तम धर्म समझकर दृढ श्रद्धासें अंगीकार किया और सर्व मतावलंबियोंके समक्ष सर्वके उपकारवास्ते सूरिजीसे देव, गुरु और धर्मका स्वरूप पूछा। सूरिजीने फरमाया कि–जि-

न्होंने रागादि शत्रुओंको जीता है, जो त्रैलोक्यपूज्य हैं, ऐसे सर्वज्ञ परमात्माही देव हो सक्ते हैं। देव सर्वज्ञ होना चाहिये। सर्वज्ञ वह हो सक्ता है जो निर्दोष होवे, सामान्यतया देवमें अज्ञान (१) क्रोध (२) मद (३) माया (४) लोभ (५) मान (६) रति (७) अरति (८) निद्रा (९) शोक (१०) असत्य (११) चोरी (१२) मत्सर (१३) भय (१४) प्राणिवध (१५) प्रेम (१६) क्रीडा (१७) प्रसंगहास (१८) येह (१९) दोष न होने चाहिये। स्त्रीका त्यागी, सदाचारगामी, सर्व जीवोंकी रक्षा करनेवाला, शुद्धमार्गका उपदेशक, वैराग्यवान गुरु ही संसारसमुद्रसें तारनेको समर्थ है। अनेक जीव धर्मकी परीक्षा करते हुये नजर पडते हैं परंतु सर्वज्ञ भगवानका कथन किया हुआ जीवदयारूप धर्मही धर्मकोटिमें दाखल हो सक्ता है।

सूरिजीकी इस देशनासें राजाके मनसें मिथ्यात्वांधकार दूर हुआ, और ज्ञानसूर्यका खूब उदय

हुआ, उसी समय गुरुमहाराजके उपदेशसे सुवर्णमय श्रीशांतिनाथ स्वामिकी मूर्ति तैयार करवाकर प्रतिष्ठा-महोत्सवपूर्वक मंदिरमें स्थापन करवाई।

इधर भरुचशहरमें देवबोधी नाम एक संन्यासी रहता था वह एक दिन स्नान करनेवास्ते नर्मदा नदीपर गया, उनके पहले जिसकों स्वर्णसिद्धि प्राप्त हुई थी और जिसकों सारस्वत मंत्र सिद्ध था ऐसा दीपकाचार्य नामका कोई महात्मा वहां आया हुआ था और अपना मृत्युसमय समीप जाणकर लोगोंकों सोनेका दान दिया करताथा। देवबोधि ने उसकी खूब सेवा की, और उससें सारस्वत मंत्र प्राप्त किया। वहांसे देवबोधि नर्मदा नदीमें गया, और गलेतक पानीमें खडे रहकर सारस्वत मंत्रका (६) लाख जाप किया। परंतु सरस्वतीका दर्शन न होनेसें उसने रोषमें आकर माला नदीमें फैंक दी। वह माला नदीमें न पडकर आकाशमें अधर ठहर रही। इस बनावकों देखकर देवबोधि कुछ विचारमें पडा। तब

देवताने आकाशमें खडे रहकर कहा कि—हे देव-बोधि ! क्या विचार करता है ? पूर्वजन्ममें तूंने (६) कायाके जीवोंकी हिंसा की है वह हिंसा इस जापसें दूर हुई है । अब एकलाख और जाप कर जिससें विद्या सिद्ध होगी । इसबातकों सुनकर देवबोधिने लाख जापकरके सरस्वतीको प्रत्यक्ष किया । देवीने प्रसन्न होकरके कहा—आठ अक्षरोंमें तुमारी मरजी-पूर्वक (दिल चाहेसो) मांगो । देवबोधिने कहा "भुक्तिमुक्ती सरस्वति !" देवी वरप्रदानकरके स्वस्थानपर चली गई । देवबोधि इंद्रजाल, मंत्रशास्त्र, ज्योतिःशास्त्र आदि अनेक कलाओंमें प्रवीण हुआ । सर्वजनोंका और विशेषसें ब्राह्मणलोकोंका अत्यंत सन्मानपात्र हुआ और अनेक राज्यस्थानोंमेंभी प्रतिष्ठापात्र हुआ । कुमारपालभी प्रथम इसको गुरु मानताथा । इसे खबर मिली के-मेरा भक्त कुमारपाल जैन होगयाहै तब केलेके पत्तोंकी काचे सूतके तंतुओंसे बांधी हुई पालखी जोकि आठआठ वर्षके बालकोंने अपने

खंधोंपर उठाई हुईथी उसमें वैठकर पाटणकी राजसभामें आया। राजाने उसे बहुत सन्मान देकर सुवर्णासनपर वैठाया, और कुशल प्रश्न पूछा। देवपूजाका समय होनेसें देवबोधिको साथमेंही लेकर राजा मंदिरमें गया। वहां पूर्वराजाओंकी बनाईहुई, शंकर विष्णु आदिकी प्रतिमाओं, तथा स्वयं बनवाई हुई श्रीशांतिनाथस्वामि की प्रतिमाकी पूजा करने लगा।

देवबोधि श्रीशांतिनाथ स्वामिकी प्रतिमा (मूर्ति) को देखकर बोला—हे राजन्! तुमकों तीर्थंकर प्रतिमाकी पूजा करनी उचित नहीं है। जैनधर्म वेदविरुद्ध होनेसें अनादरणीय है। वैदिकधर्म सर्व धर्मोंसे पवित्र धर्म है। कुमारपाल बोला—वैदिकधर्म सर्वसें पवित्र कहलाकर भी हिंसासें कलंकित है इसवास्ते मुझे रुचि पैदा नहि करता, और जैनधर्म सर्व जीवोंकी दयाका मुख्य प्रतिपादक होनेसें तथा पूर्वापर अविरोधी होनेसें मुझे अति आनंद देता है। यह सुनकर

देवबोधि बोला कि—राजन् ! तुमको मेरे वचनपर विश्वास नहि हो तो प्रत्यक्ष मूर्तिमंत महेश्वरआदिसें और तुमारे पूर्वपुरुष जो इस वक्त यहां मौजूद हैं उनकों पूछो। यह कह कर अपनी मंत्रशक्तिसें उसनें तीनोही देव और मूलराज आदि (७) राजा प्रत्यक्षकर दिखाये। राजाने आश्चर्यमें आकर उन देवोंको नमस्कार किया। तीनोंही देवोंने ऊंचा हाथ करके राजाकों आशीर्वाद दिया। और कहा कि—हे राजन्—सर्वथा प्रकारसें भ्रांतिकों छोडकर हमारे पर श्रद्धा रखो, और परमयोगीश्वर देवबोधिकों गुरु मानों। ऐसा कहकर देव अदृश्य हुए, और जाते हुए शिक्षा करते गये कि—तुमने कदाचित्भी वेदमार्गका त्याग नही करना। इस वृत्तान्तसें राजाका मन देवबोधि पर ललचाया और सर्वजनों को विसर्जन करके स्वयं भोजन करनेकों गया। यह सर्व वृत्तान्त वाग्भट्टमंत्रीने जाकर सूरिजीमहाराजकों सुनाया, उन्होने कहा कुच्छ फिकर मत करो सब ठीक होगा। कल

सुबह तुमने राजाकों हमारे पास ले आना। राजाका मन संशयसें दोलायमान हुआ था। सायंकाल सभामें बैठे हुए वाग्भट्टको राजाने कहा—इसकालमें देवबोधि जैसा कलावान् गुरू कोई नहीं है न जाने अपने गुरु हेमचंद्रजीमेंभी ऐसी कला होगी कि नही? नम्रतासें मंत्री बोला पृथ्वीनाथ! सुबह आप उपाश्रय पधारें और देवबोधिकों भी साथ लावें जो कुछ तत्त्व होगा सो स्पष्ट दिखाई दे जावेगा।

रात्रीका समय हुआ सभा विसर्जन हुई सर्व अपने अपने स्थानपर पहुंचे। प्रातःकाल सूरिजीमहाराजने उपरा उपरी सात पाट रखवाये और उनके उपर स्वयं बैठ कर उपदेश देने लगे राजकुमारपाल राजगुरू पुरोहित और देवबोधि वगैरह सर्व सभासदोंसें सभा चिकार भर गई। इधर सूरिमहाराजने अपने अध्यात्मविद्याके बलसे नाडियोंके रोकनेका और पवनको स्थिर करनेका प्रारंभ किया। पांचही प्रकारके वायुके प्रचारके निरोधद्वारा आसनसें अधर रहकर व्याख्यान

देना शुरू किया। व्याख्यानमें गुरू महाराजनें इस प्रकारका उपदेश दिया कि, नरककी पद्दी कों देनेवाली हिंसाका त्याग करना, असत्य वचन कदापि न बोलना, चोरीका सर्वथा त्याग करना, विषयवासनासें मनको हटाना, सर्व संगसे निवृत्त रहना यह ही सनातनधर्म है, इसिसे अनेक प्राणी मोक्ष हुयेहै, होते हैं और होंगे। इत्यादि देशना चलतीथी इतनेमेंही पूर्वके संकेतानुसार शिष्योंने नीचेसे पाट खैंचलिये, तोभी सूरिराज अस्खलित वचनधारासें उपदेश देते रहे यह देखके राजा आदिके मनमें तर्क पैदा हुआ कि, "यह क्या सिद्ध है? या बुद्ध है? ब्रह्मा है? कि ईश्वर है? अगर ऐसा न होवे तो इनमें ऐसी शक्ति कैसे होवे! देवबोधि तो केलेके पत्रके आधारसें मौनपणे रहा हुआ था, मौनसें पवनका रोकना बहुत सुगम होता है, परंतु सूरिजीमहाराजकी क्रियातो लोकोत्तरही है। सूरिजीमहाराजने अपने योगबलसें डेढपहरतक निराधार आकाशमें रहकर

देशना दी। इस चमत्कारसे कुमारपालका मन अतीव प्रसन्न हुआ, और हाथ जोडके बोला, हे भगवन्! सूरिराज! आपके कलाकौशलकी बरोबरी करनेवाला आज जगत् भरमें दूसरा नहि है। अब आप कृपा करके अपने आसनपर विराजिये। सूरिजीमहाराज आकाशसें नीचे उतरे, और राजाकों बोले "आउ ज़रा हमारी सभातो देखो" ऐसा कहके उपाश्रयमें लेगये और वहां सोनेके आसनोंपर विराजमान आठ महाप्रातिहार्योंकरके सहित (६४) इंद्रोंकी श्रेणीसें सुशोभित श्रीऋषभदेवादि (२४) तीर्थंकर देखे इस शुभ बनावसें प्रसन्न होकर राजा उन देवाधिदेवोंकी स्तुति करता था कि—इतनेमें वहां आये हुये अपने पूर्वज चुलुकि आदि (२१) राजा उसके देखनेमें आये उनके देखनेसें राजाके मनमें कुछ औरही आनंद हुआ, सूरिजीमहाराजके साथ खडे रहकर ऋषभादि जिनोंकी स्तवना करके सन्मुख बैठा तब प्रभुने फरमाया "हे राजेंद्र! दयामय धर्म

स्वीकार करनेसें तेरा अवश्य कल्याण होगा, दयाधर्म सर्व धर्मोमें मुख्य धर्म है, सर्व देवोंके अवताररूप यह हेमचंद्र नाम गुरु तुझे पूर्णपुण्योदयसें मिले हैं, इनके वचनकों सदैव आराधन करना" प्रभूकी देशना समाप्त होनेपर कुमारपालके पूर्वपुरुप बोले "हे भूपेंद्र! तेरे जैनधर्म अंगीकार करनेसें हम कृतार्थ और सुखी हुये हैं तेरे इस कल्याणमार्गके स्वीकार करनेसें हमभी प्रसन्न हैं, जैसा लिया है स्थिर चित्तसें श्रद्धापूर्वक वैसा आराधन करना". ऐसा कहकर सर्व अदृश्य होगये, राजा चमत्कार देखकर—बोला हे गुरुमहाराज! इसमें सत्य क्या है? सो कृपा करके कहो. सूरिजी—राजन्! यह सर्व इंद्रजाल है, इसमें तत्त्व कुछ भी नहीं है, तत्त्व वह है। जो तुमकों पहेले सोमेश्वरने कहा है। देवबोधिके पास एक कला है, हमारे पास सात हैं परंतु वास्तवमें सर्व इंद्रजालकी रचना है.

इस प्रकारके सत्य उपदेशसें राजाका मन धर्ममें

निश्चल हुआ थोडे समय बाद राजाने सूरिजीमहा-
राजको प्रार्थना की कि, हे भगवन्! पहले मैं मि-
थ्यात्वरूप धत्तुरेके आस्वादसे लोहको सुवर्णकी तरह
अतत्त्वकों तत्त्व मानता था, परंतु अब आपकी वाणी-
रूप शर्कराके योगसे सर्व तत्त्वोंकों यथार्थ समझने
लगाहूं, इसवास्ते कृपा करके सम्यक्त्वमूल श्रावकव्रत
मुझे उच्चारण करावें। सूरिजीमहाराजनेभी शासनो-
न्नति और आत्मोन्नति करनेकी तीव्र अभिलाषावाले
राजाकों व्रतारोपण कराने वास्ते शुभ मुहूर्तका निश्चय
किया। निश्चित शुभ दिनके आनेपर राजाने सकल
श्रीसंघको आमंत्रण दिया। श्रीसंघका सत्कार करने-
वास्ते रत्न, सुवर्ण, वस्त्र और सुगंधी कर्पूरादि चूर्णसे
भरे हुये विशाल थाल तथा अन्यभी जो जो पदार्थ
एकत्र किये हुये थे उनसे संघकी भक्ति करी, और
सर्वत्र अमारी उद्घोषणा कराई। सुगंधी जलसें सर्व
राजमार्गमें छटकाव कराया। अनेक प्रकारके वाजिंत्र
बजवाये। शुद्ध लग्नके आनेपर पापक्षय हार और

चंद्रादित्य कुंडल आदि आभूपण तथा सुंदर वस्त्रोंसे सुशोभित होकर मंत्री सामंतादि सहित राजा उपाश्रयमें आया। हाथीस्कंधसें उतरते हुये राजाकों वाग्भट्टमंत्री आदिने मोति भवाल आदिसें वधा लिया। धर्ममें स्थिर करनेवास्ते आचार्य महाराजनेभी सन्मानपूर्वक पास बुलाया और आदरपूर्वक बैठाया। पीछे राजाने पहले पधराई हुई ३२ जिनप्रतिमाओंके आगे तीन प्रदक्षिणा, वंदना, पूजा आदि सकल शुभ क्रिया आनंदपूर्वक समाप्त की। और श्रीहेमचंद्रसूरिगुरुके मुखसें सम्यक्त्वमूलद्वादशव्रत अंगीकार किये। अप्राप्तपूर्वधर्मकी प्राप्तिसें राजाने अतीव हर्ष मनाया, और गुरुमहाराजने समयोचित ग्रहण किये हुए व्रतोंके पालनका उपदेश दिया। अब गुरु महाराजाके उपदेशसें राजाने सर्वत्र दयाधर्मकी प्रवृत्ति कराई, और पाटणकी रयास्तमें ऐसी उद्घोपणा करवा दी की, चार वर्णमेंसे जो कोई अपनेवास्ते अथवा दूसरे के वास्ते कोईभी जीवकों मारेगा वह

राजद्रोहि गिणा जायगा । जो जो लोक हिंसाकरके अपनी आजीविका करते थे उनकों दूसरे कामोंमें लगा करके हिंसासे निवृत्त करदिये। सर्व मनुष्य, पशु, पानी छान करके पीवे ऐसी आज्ञा की। अपने ११ सौ हाथी, ११ लाख घोडे, और ८० हजार गौओंको पानी छान करके पीलानेकी आज्ञा की मेरे राज्यमें कोईभी किसी जीवकों मारे तो मुझे खबर दो ऐसा हुकम दे करके चारों तर्फ अपने नोकरोंको भेजा। एकदिन राजपुरुषोंने आकर राजासे कहा कि—कच्छ-देशमें एक बनियेने एक जूं कों मारकर आपकी आज्ञाका भंग किया है। राजाने अपने नौकरद्वारा उसे बुलाया, और खुब धमकाया, आखीर जूं मार-नेके अपराधमें उसे यह हुकम किया कि तूं तेरी कुल मिलकत खरच करके जिनमंदिर बनवा देवे तो तूं छूट सक्ता है। राजाकी आज्ञासे उसने वैसा किया. उस मंदिरका नाम "यूकाविहार" प्रसिद्ध हुआ। इतना मात्रही नहीं बलकि [1]जुआ-[2]मांस-[3]मदिरा-

वेश्या-चोरी-परस्त्री-शिकार-इनसातही व्यसनोंको अपने राज्यसे देशनिकाला दिया। एकदफा नवरात्र (नौराते) के दिनोंमें देवीयोंके पुजारियोंने आकरके कहा कि—महाराज! "कंटेश्वरी" आदि देवीयें वलिदानमें बकरे मांगती है, अगर आप नहीं देवेंगे तो यह आपको विघ्न करेंगी। राजाने गुरुमहाराजके पास जाकर सर्व हाल सुनाया। गुरुमहाराजने कहा कि—हे राजेंद्र! देवता कदापि कवलाहार नहीं करते, मांसभक्षणकी तो वात ही क्या? देवियोंके नामसें यह पुजारीही जीवोंको मारकर खाजाते हैं। आपने यदि पूजाही करनी है तो जीते बकरे इन देवियोंके आगे चढादो। राजाने वैसाही किया। पशु-सत्रके सब जीते ही देवियोंके मंदिरोंमें खडे रहे। राजाने पुजारियोंको खूब धमकाया, और देवियोंकी कपूर, कस्तुरी, नालिकेर आदिसे पूजा की। दशमीके दिन उपवास करके राजा श्रीजिनेश्वरदेवका ध्यान करता हुआ समाधिमें बैठा था। इतनेमें हाथमें

त्रिशूलको धारण करती हुई कंटेश्वरी देवी आकर बोली—हे राजेंद्र! मैं तेरी कुलदेवी हूं, तेरे पूर्व पुरुष मुझे वलिदान देते आये हैं, अब तू क्यों निषेध करता है?

प्राणांतमें भी अपने कुलाचारकों उल्लंघन न करना चाहिये। इस बातको सुनकर राजाने कहा हे जगत्का कल्याण करनेवाली देवी! सत्यदयामयधर्मका मर्म अब मेरे जाणनेमें आया है, धर्मके तत्व समझे विना अज्ञान अवस्थामें जीव कुछभी करे परंतु समझे पीछे खोटा कर्म कदापि न करना चाहिये। शास्त्रकार फरमाते हैं कि—एक घावसे सौ घाव, एकमरणसें सौ मरण, एक आलसें सौ आल, सहने पडते हैं। शास्त्ररूप चक्षुके होनेपर मैं अधर्मरूप खड्डेमें कैसे पड़ूं? इसबातको सुनकर देवी एकदम गुस्से हुई, और उसने राजाके माथेमें त्रिशूल मारा, उससें राजाका सर्व शरीर कुष्टी होगया। शरीरकी यह हालत देखकर राजाके मनमें वैराग्य उत्पन्न हुआ,

परंतु जिनेश्वर देवके धर्म उपरसें विरक्तता नहीं हुई। केवल राजाने मनमें इतनाहीं दृढ विचार किया कि—मेरेही किये हुए कर्मोंका फल मैंने भोगना है। पीछे उद्‌यन मंत्रीको बुलाकर सर्व हकीकत सुनाई, और शरीरकी हालत दिखाई। राजाकी यह अवस्था देखकर मंत्रीके मनमें वडा खेद पैदा हुआ। और "अब क्या करना चाहिये" इस विचार-पर आरूढ हुआ। मंत्रीकों अत्यंत शोकातुर देखकर राजाने कहा—मंत्रिराज! मुझे शरीरकी चिंता नहीं है, परंतु मेरी हालत देखकर लोक धर्मकी निंदा करेंगे इस बातकी पूरी चिंता है। इसवास्ते मेरे शरीरकी बुरी हालत कीसीकों भी नहीं कहना। मैं रातकों अग्निमें जलकर प्राण छोड दूंगा। राजाके इस अनिष्ट वचनकों सुनकर धैर्य धारणपूर्वक मंत्री बोला हे पृथ्वीनाथ! आप चौलुक्य वंशके मणि पृथ्वीका पालण करते हो तबही यह पृथ्वी सनाथ है। इस-वास्ते जिस तरहसे शरीरकी रक्षा हो ऐसाही करना

उचित है। शरीर होगा तो धर्मभी बनेगा इसवास्ते जिस प्रकारसें देवी प्रसन्न हो वह काम करके धर्मका साधन शरीर कायम रखना चाहिये। मंत्रीके इस वचनको सुनकर राजा गुस्सेमें आकर बोला–हे निःसत्व वणिक्! तूं भक्तोंवाली वृत्ति दिखाकर ऐसे पागलोंवाले वचन क्यों बोलता है?। शरीर तो भव-भवमें मिल सक्ता है, परंतु धर्म वारंवार नहीं मिलता शरीरके जानेपरभी यदि धर्म रहता होतो और क्या चाहिये? इसवास्ते शीघ्र जाकरके चंदनकी चिता तैयार कराओ, और इस बातको केवल तुमारे मनमेंही रखो। रात्रीकों मैं अपना स्वार्थ सिद्धकर लूंगा। मंत्रीने जबाब दिया कि—महाराज! मैं एकदफा गुरुमहाराजकों पूछूं, गुरु महाराजके उपदेश विना कोई काम करना ठीक नहीं है। यह कहकर मंत्री श्रीहेमचंद्रसूरिजीके पास आया, और राजाका सर्व हाल कहकर प्रार्थना की कि—यदि राजाका अहित हुआ तो शासनकी जो आज तक उन्नति हुई है उससें

सहस्रगुणी अवनतिका संभव है। इस बातको सुन- कर सूरिजीने फरमाया—तुम जरामात्रभी घाबराओ नहीं, इस उपद्रवका एक क्षणमें नाश होजावेगा। जाओ जल्दी उष्ण पानी लाओ। मंत्रीने उष्ण पानी लाकर गुरुमहाराजकों दिया। गुरुमहाराजने उसे सूरिमंत्रसें मंत्रित किया, और कहा जाकर यह पानी राजाकों पिलाओ, और शरीरपर छांटो। मंत्रीके वैसे करनेपर राजाके शरीरसें सर्व रोग दूर हुआ। और शरीरकी कांति सुवर्ण जैसी होगई। राजा और मंत्रीने बडा हर्ष मनाया हर्ष गद्गदसें राजा बोला कि— धन्वंतरी वैद्यकी तरह जिस गुरुमहाराजका ऐसा प्र- भाव है उस पूज्यकी महिमा अद्भुत और अगोचर है। मेरेपर गुरु महाराजका जो उपकार है, उसका बदला मैं कोटिजन्ममें भी दे नहीं सक्ता। इस प्रका- रके वार्तालापसें आनंद मनाता हुआ राजा मंत्री, सामंत, राजकीय वर्ग सहित हाथीपर चढकर गुरु- महाराजकों वंदना करनेवास्ते गया। वहां धर्मशालामें

प्रवेश करते हुये रुदन करती हुई एक स्त्रीका आवाज उसके सुननेमें आया। आगे जाकर देखा तो वही कंटेश्वरी प्रार्थना करती हुई नजर पडी, और राजाकों हाथ जोडकर बोली हे राजन्! तुमारे गुरुमहाराजने अपने मंत्रके बलसें मुझे यहां बांध रखी है, मैं अत्यंत दुःखिनी हूं, मुझे छुडाओ।

मैं आपकी आज्ञासें आपके १८ ही देशोंमें जीवदयापलाऊंगी। इस प्रकार दीनताकों दिखाती हुई देवीकों, राजाकी प्रार्थनासे सूरिजीमहाराजने छोड दी। उस दिनसें अपनी प्रतिज्ञानुसार देवीभी जीवदया पालती हुई, कुमारपालकी सभाके दरवाज उपर रहने लगी, और भक्तिश्रद्धापूर्वक कलिकाल सर्वज्ञ हेमचंद्रसूरिजीके उपदेशकों सुनपर शासनकी प्रभावना और रक्षा करने लगी। इधर राजानेभी गुरुवंदनरूपकार्यको समाप्त करके हाथ जोडकर प्रार्थनाकी कि, हे भगवन्! जगत्के जीवनरूप आपकी एक जिव्हासें स्तवना करनेको कोई समर्थ नही

है। आपके किये हुए पहलेके उपकारोंका वदला मैं दे नही सक्ता, इतनेमें तो दूसरा ऋण आपकी तर्फसे मेरे शिरपर चढता जाता है प्रथम आपने मुझे प्राणदान दिया और पीछे धर्मदान दिया। अब दिव्यकष्टसें रक्षण किया। कोई दिन ऐसाभी आयगा कि—आपका प्रत्युपकार करनेकी शक्तिवाला मैं होऊंगा !

गुरुमहाराजने कहा, हे राजन् ! हमारे कथनानुसार तुमने १८ देशोंमें श्रीजैनधर्मकों फैलाया और दयाधर्मकी प्रवृत्ति कराई इसवास्ते हमारे किये उपकार का वदला हमकों मिलगया है, और ऐसे घोर उपसर्गसमयमें भी तुमारा चित्त धर्ममें स्थिर रहा, इसवास्ते तुमकों आजसें "परमार्हत" विरुद् दिया जाता है ! इस प्रकारके उत्तम विरुदसें खुशी मनाता हुआ राजा गुरुमहाराजकी धर्मदेशनाका श्रवण करके परमानंदमें मग्न हुआ हुआ स्वस्थानपर आया।

इस समय वाणारसी नगरीमें गोविंदचंद्रका लडका जयचंद्र राजा राज्य करता था। यह राजा वडा प्रतापशाली था, इसवास्ते शेपराजाओंको अपना दास समझता था। सातसौ योजनमें इसका राज्य था। ४ हजार हाथी, ६० लाख घोडे, ३९ लाख प्यादे आदि इसकी ऋद्धि, अन्य राजाओंको मनमें भय पैदा किया करती थी। इसकी एक दासी, जिसका नाम गोमती था, वह स्त्री होने परभी अतुलपराक्रमवाली थी इस लिए राजाने उसे अपनी फौजकी मालिकन बनाई थी इस देशमें प्रायः चारही वर्णोंमें मांसाहारका ज्यादा प्रचार होनेसें जीवहिंसा बहुत होती थी। इस जीववधको अटकानेके वास्ते राजा कुमारपालने एक पट तैयार कराया था, जिसमें स्वर्ग और नरक आवेहूब चित्रे हुए थे। उस चित्रपटके मध्यभागमें "श्रीहेमचंद्रसूरि कुमारपालको धर्मोपदेश देते हैं" ऐसा चित्र था। दयाका फल स्वर्ग और हिंसाका फल नरक, यह उस चित्रपटमें भली

प्रकारसें वताया गया था। उस पटके साथ हजार घोडे और वहुत साधन देकर राजाने अपने मंत्रियोंकों वणारसी भेजा। उन्होने वहां जाकर वहुत द्रव्यके खरचसें जयचंद्र राजाके राजवर्गीय लोकोंको वश किया, और उनकी मारफत राजाको मिलकर कुमारपालकों भेजी हुई भेट रजु की ! जयचंद्रने खुशीसे भेट स्वीकार की और उस मनोहर पटको सभासमक्ष खुलाकर देखा। उसमें सूरिजी और राजाके चित्रोंकों देखकर राजा जयचंद्रने पूछा यह फोट्ट किसकिसका है? मंत्री लोकोंने कहा महाराज! यह साधू महात्मा जो आपके दृष्टिगोचर हो रहे हैं यह राजगुरु हैं और इनका नाम "श्रीहेमचंद्रसूरि है। इनके सामने बैठा हुआ हमारा स्वामी कुमारपालराजा है। इस महाराजाने हेमचंद्रसूरिसें नरक और स्वर्गका फल सुनकर हिंसाका सर्वत्र त्याग कराया है, और सर्वत्र अमारी पटह वजवाया है!, हमारे देशमेंसे निकाली गई हुई जगत्वैरिणी

हिंसा हाल आपके राज्यमें स्वतंत्र विचरती है, उसे देश निकाला दिलाने वास्ते हमारे स्वामी कुमारपालने हमकों आपकी सेवामें भेजा है। मंत्रियोंके इस कथनकों सुनकर जयचंद्रराजा सभासमक्ष वोला कि गुर्जर देशी विवेकियोंमें वृहस्पति कहलाते हैं सो युक्त है ऐसे दयालु राजाओंके होनेपर वह राजधानीयें और देश विशेष शोभते हैं। ऐसे उपायोंकी योजना करके जो परप्राणोंकी रक्षा करते हैं उन राजाओंकों वारंवार धन्यवाद देना घटित है ! यह कुमारपाल स्वयं दयालु है, और मैं इसकी प्रेरणासें भी दया न पलाऊं तो मुझें धिक्कार है। ऐसा कहकर उसने अपने देशमेंसें १८०० जाल और १००० दूसरे हिंसाके साधन मंगवाकर जला दिये, और ढंढेरा फिराया कि, "आजसें हिंसा सर्वथा जलादि गई है। जों इसे सेवन करेगा वह राजद्रोही गिणा जायगा" इसके पीछे जयचंद्रने वदलेमें भेट देकर कुमारपालके मंत्रियोंकों विदाय किया, और उन्होने भी पाटण

आकर सर्व समाचार सभासमक्ष राजाकों निवेदन किया। इस वृत्तान्तकों सुनकर श्रीहेमचंद्रजी महाराजने कुमारपालकी इस प्रकार स्तुति की—

भूयांसो भरतादयः क्षितिधरास्ते धार्मिका जज्ञिरे,
नाभून्नो भविता भवत्यपि न वा चौलुक्य ! तुल्यस्तव।
भक्त्या कापि धिया कचिद् घनधनस्वर्णादिदत्त्या कचित्
देशे स्वस्य परस्य च व्यररचज्जीवावनं यद्भवान्॥१॥

इसप्रकारसे चौलुक्यपति "परमार्हत" कुमारपाल गुरुमहाराजका और सर्वजनोंका प्रसादपात्र होकर अखंड शासन राज्यकों भोगता हुआ अपने शुभजीवनको भली प्रकारसे गुजारने लगा,।

एक समयका जिकर है की सौराष्ट्र देशके समरराजाकों कबजे करनेवास्ते राजाने उदयनमंत्रीको फौज देकर भेजा। मंत्री पाटणसें प्रयाण करके पालीताणे आया।

पार्श्ववर्तियोनें पूछा वे बातें आप हमसे कहना मुनासिब समझें तो कहें। मंत्रीने कहा, एक तो मेरी इच्छा यह है कि अंबडकों दंडनायक बनाना, १ दूसरा श्री शत्रुंजय पर्वतपर पत्थरका मंदिर बनवाना २ तीसरा श्रीगिरनार पर्वतपर पाउडीयां बंधानी ३ और चतुर्थ मरतीवक्त साधुमुनिराजसें सर्वपापोंकी आलोचना करानी ४ ये कार्य न होनेसें मैं इस दीनदशाकों प्राप्त होरहाहूं। प्रधान मंत्रीलोक बोले आपके धारे हुए प्रथमके ३ काम तो आपका सुपुत्र वाहड करेगा, इस विषयमें हम जुम्मेवारी उठाते हैं। और आराधनावास्ते साधु मुनिराजकी तालायश करते हैं। यह कहकर वह सब बाहर आये और एक राजपुरुषकों साधुका वेष पहनाकर कुछ थोडी साधु कि क्रिया सीखाकर मंत्रीके पास भेजा।

उस कृत्रिम (बनावटी) मुनिने आकर मंत्रीकों उंचेस्वरसे धर्मलाभ दिया। मंत्रीनेभी उस साधुकों साक्षात् गौतमावतार मानकर वंदन किया, और

उसके समक्ष सर्वजीवोंको खमाया, सर्वपापोंकी निंदा और सर्व पुण्यकार्योंकी अनुमोदना की सम्यक्त्वकी शुद्धिपूर्वक शुभभावनारूप रथपर बैठे हुए उदयन महामंत्रीने स्वर्गमें स्थान कीया।

इधर मुनिवेषको धारण करनेवाले उस बनावटी मुनिने मनमें विचार किया कि, अहो मुनिवेषका कितना माहात्म्य है? की जिसके प्रभावसे मैं पामर, उदयनमंत्रीका वंदनीक और पूजनीक हुआ। अब मुझे योग्य यह है कि इस वेषके अनुकूल कर्म करके आत्माको सद्गतिका भाजन बनाऊँ। इस भावनाको मनमें दृढ करके वह गिरनारपर्वत उपर गया और वहांपर साठ उपवास करके स्वर्गसुखोंका भोगी हुआ। पीछे सामंतोने पाटण आकरके चौलुक्यपति कुमारपालकों वैरीकी लक्ष्मी भेट की। और उदयन मंत्रीका संपूर्ण वृत्तान्त सुनाया राजाने इस वक्त बहुतही अफसोस मनाया। बाहड और अंबडको जब पिताके मरणकी खबर पडी तो उन्हे

अपार शोक हुआ। कई एक दिनतक भोजन और राजकार्य भी नही किया। राजाकों साथ लेकर सामंत लोक मंत्रीके घर गये और जा करके बाहड और अंबडको बोले यदि तुम खरे पितृभक्त हो तो, तुमारे पिता श्रीजीने लिये हुए तीर्थोद्धाररूप अभिग्रहको पूर्ण करो और स्वर्गस्थ पिताकों ऋणमुक्त बनाओ। इस बातको सुनकर बाहड मंत्रीने अपने भाई अंबडको सेनापतिकी पद्वी दिलाई, और आप राजाकी आज्ञा लेकर गिरनार पर्वतपर गया। वहां कितना एक अरसा ठहरकर ६३ लाख रु० के खरचसें पग रस्ता बंधाया। इसमें बहुतसा कार्य अंबिकादेवीकी सहायतासे भी हुआ था बाद श्रीशत्रुंजय तीर्थकी तलाटीनीचे पडाव डाल कर स्वदेशी परदेशी अनेक कारीगरोंकों बुलाया। इस समय आसपासके ग्रामोंके अन्य शाहुकारभी तीर्थोद्धारकी बात सुनकर पुन्य कार्योंमें अपनी लक्ष्मीकों लगाने वास्ते वहां आये और हाथ जोडकर नम्रतापूर्वक बोले

हे पुन्यात्मन्! मंत्रीराज! यद्यपि तुम अकेलेही इस महातीर्थका उद्धार करसक्तेहो तथापि हमारी प्रार्थना है कि, हमको भी इस पुन्य कार्यमें शामिल करके लाभके भागी बनाओ। यह कहकर उन शाहुकारोंने अपनी अपनी शक्तिअनुसार रुपैया दिया। मंत्रीने भी उन सबके नाम टीप(दफ्तर)में दाखल किये। एक गरीब श्रावक जिसका नाम 'भीम' था उसके पास केवल सात दाम थे उसने वह देकर, कहा—हे मंत्रीराज! मैं गरीब हुं परंतु पुन्यके काममें भाग लेना चाहता हूं। मंत्रीने खुशीसें उसका नाम सबसे उपर लिखा। कई लोकोंने मुंह वांका भी किया, परंतु मंत्रीने उनकों समझाया कि, ख्याल करो, तुमारे पास जितना धन था उसमेंसे कोईने दशमा, कोईने वीशमा, और कोईने चालीशमा अंश धर्ममें खर्च किया है, परंतु इस बिचारेके पास जो कुछ था वह सब इसने धर्ममें लगा दिया है; इस वास्ते तुमारे से और मेरेसे इस भाग्यशालीकी श्रद्धा ज्यादा प्रशस्य

है। इस बातको सुनकर सर्व लोक प्रसन्न हुए और उस श्रावकका सन्मान करने लगे। एक दिन गौ बांधनेवास्ते खीलेकी जमीन खोदते हुए उस श्रावकको ४ हजार सोनामहोरोंसे भरा हुआ चरु मिला। उसे देखकर उसने विचार किया की आज मेरा पुन्योदय जागा है जिससें मुझे ४ हजार सोनामोहरें मिली हैं, अब यह रुपया भी धर्ममें ही लगाया जावे तो अच्छा है। इसमें जब घरवालीकी सम्मति पूछी तो उसनेभी खुशीसे स्वीकार किया। भीम धन लेकर मंत्रीश्वरके पास आया और सर्व समाचार सुनाकर कहाकि यह धन आप तीर्थोद्धारमें खर्च करें। मंत्रीने कहा भाई यह द्रव्य तुम तुमारे घर निर्वाहवास्ते रखो। भीम बोला नहीं साहेब! यह पराया धन है मैं इसे नहीं रखसक्ता। इतनेमें तीर्थका अधिष्ठायक कपर्दियक्ष प्रत्यक्ष होकर बोला हे भीम! तैने धर्ममें श्रद्धा रखी इस वास्ते तेरी धर्मबुद्धिसें खुश होकर मैंने यह धन तुझे दिया है, तूं

खुशीसे इसका परिभोग कर। यह सुनकर खुशियां मनाता और धर्मकी अनुमोदना करता हुआ भीम घर पहुंचा। इधर शुभ मुहूर्तके आनेपर मंत्रीने काष्ठ-मय चैत्यको उधेड कर नीवमें तैलादिक डाला और मंदिर बंधाना शुरु किया। दो वर्षमें मंदिर तैयार हुआ। एक आदमीने आकर वधामणीदी तब उसको मंत्रीने सोनेकी ३२ जीभें दी। अन्य समय दूसरे आदमीने आकर डरते डरते कहा, मंत्रीराज! प्रासाद (मंदिर) फटगया! इस बातकों सुनकर मंत्रीने उसे दोगुणा दान दिया। यह देखकर लोकोंने पूछा साहेब! यह क्या? मंत्रीने कहा, हमारे जीते जीते यह मंदिर फटगया सो अच्छा हुआ क्यों कि हमको फिर उद्धार करा सक्ते हैं और करावेंगे भी। यह कहकर मंत्रीने मिस्तरी लोगोंकों बुलाकर मंदिरके फटनेका कारण पूछा, तो उन्होने कहा कि हे मंत्रीराज! प्रदक्षिणामें पवन भरजाताहै वह बाहिर नही निकल सक्ता, यदि प्रदक्षिणा नही बनाई जावे

तो आपके वंशकी वृद्धि होती अटकती है। लिखा है कि, प्रदक्षिणा विनाका देवालय बनवानेवालेका वंश नहीं बधता। इस बातको सुनकर बाहड मंत्री बोला, जगत्में वंश किसिका स्थिर रहाहै? वंशतो भवोभवमें मिलता है, मुझे तो धर्मकी जरुरत है संतानकी नहीं। संतानसे तो केवल इस लोकका सुख है, और तीर्थोद्धारसे तो भरतादि महाधर्मात्माओंकी पंक्तिमें दाखल होकर मनुष्य स्वर्गमें अपनी कीर्तिका स्तंभ स्थिर करता है। यह कहकर मंत्रीने फिर काम चलानेकी आज्ञा की। थोडेसमयमें मंदिर फिरसे तैयार होगया। मंदिरके इस उद्धारमें २ क्रोड ९७ लाख रुपया खरच हुआ, पीछे श्रीहेमचंद्रसूरिजीको तथा श्रीसंघको बुलाकर बडे महोत्सवपूर्वक विक्रमसंवत १२११ के साल प्रतिष्ठा करवाई। सुवर्णदंड तथा सुवर्णकलश चढाया।

उसवक्त मंत्रीने देवपूजा वास्ते २४ गाम २४ बगीचे भेट कीये। और वाहडपूर नामका नगर आ-

वाद किया। उसमें श्रीपार्श्वनाथकी प्रतिमासे अलंकृत "त्रिभुवनपालविहार" नामका मंदिर वनवाया। वाहड मंत्रीके कराये हुये इस सुकृतसें प्रसन्न होकर श्रीहेमचंद्र सूरिजी बोले हे मंत्रीश्वर! सर्व जगत् धर्मके आधारपर रहा हुआ है। धर्मका आश्रय महान् तीर्थ है। तीर्थ, अरिहंतसें कहाजाता है। अरिहंत, हाल प्रतिमारूपहै, उनका निवासस्थान चैत्य है। उसका उद्धार करनेसें निःसंदेह तुमने सर्व जगत्का उद्धार किया है। इस प्रकारके स्तुति वाक्योंको सुनता हुआ वाहडमंत्री पाटण आ पहुंचा। मंत्रीश्वरके सुकृत्योंका वृत्तान्त सुनकर राजाकुमारपालको अत्यंत आनंद हुआ। एकदिन सूरवीर सुभटशिरोमणि अंवड मंत्रीने अपने पिताके नामकों सदैव कायम रखनेवास्ते, उनके पुण्यार्थ भरुचमें "समलीविहार" मंदिर वनवाना शुरू किया। दैवयोगसें नीवकें खाडेमें कारीगर लोक गिरगये। मंत्रीश्वरकों वडा खेद हुआ। उसनेभी अपनी स्त्रीऔर पुत्र सहित उसी खड्डेमें झंपापात

किया, परंतु पुन्योदयसें इतने उंचेसें पडनेपर भी चोट नही लगी। पीछे उसके निःसीमसत्वसें संतुष्ट हुई हुई कोई देवी वहां मंत्रीश्वरकों प्रत्यक्ष हुई। मंत्रीने आश्चर्य और आनंदसे नम्रतापूर्वक उसे पूछा कि, हे देवि! तूं कौन है? देवी—हेवीर! मैं इसक्षेत्रकी अधिष्ठात्री देवीहूं। मैंनेही तेरी हिम्मत और श्रद्धा देखनेकों यह सर्व चेष्टा कीथी। तैंने सर्वथा शोक न करना। यह सब कारीगर हयात हैं। कामबंद न करना! यह कहकर देवी अदृश्य होगई। और मंत्रीश्वरनें कारीगरोंको बाहिर निकालकर देवी- कि यथोचित पुष्प पक्वान्न आदि बलिदानसें पूजा की। मंदिरकी इमारत शुरू कराई और थोडेही अरसेमें १८ हाथ उंचा श्रीमुनिसुव्रतस्वामीका मंदिर तैयार करवाया उसमें चील, मुनि, और वडका वृक्षभी यथातथ्यरूपसें बनवाया[१]। संवत १२२० के साल यह सर्व कार्य समाप्त हुआ। बाद श्रीहेमचंद्राचार्य तथा कुमारपाल आदि

(१) इसका जिकर सुदर्शनचरित्रमें देखो।

सकलसंघको पाटणमें प्रतिष्ठा महोत्सवपर बुलाकर बडे आडंबरसे उस मंदिरमें श्रीमुनिसुव्रत स्वामीकी प्रतिष्ठा कराई और हर्षोत्कर्षके आवेशमें शिखर-उपर, मल्लिकार्जुनके खजानेमेंसें मिले हुये, ३२ सुवर्णकलश, दंड और ध्वज पटविधि अनुसार चढाये। नृत्यपूर्वक सुवर्ण और रत्नोंकी वृष्टि की। इस प्रसंगमें मंत्रीश्वरके अपूर्व उल्लासकों देखकर अनेक कविलोकोंने प्रशंसा की। इन सत्कृत्योंको देखकर श्रीहेमचंद्राचार्य भी अत्यंत प्रसन्न हुए। उनके मुहमेंसें यह वाक्य निकल गया कि,

किं कृतेन न यत्र त्वं, यत्र त्वं किमसौ कलिः ?।
कलौ चेद्भवतो जन्म, कलिरस्तु कृतेन किं ?॥ १॥

इस शुभप्रसंगकी समाप्ति हुए थोडेही दिन व्यतीत हुएथे कि, किसी शासनकी प्रत्यनीक देवीके प्रकोपसें मंत्री एकदम मूर्छित होगया। इस बनावकी जब सूरिजीमहाराजको खबर मिली, तो यशश्चंद्रनामक शिष्यको साथ लेकर, स

पाटणसें निकलकर, एकक्षणमात्रमें आकाश रास्ते उडकर, भरूचके नजीक आपहुंचे। वहां सैंधवी देवीकों वश करनेवास्ते सूरिशेखरने कायोत्सर्ग किया और यशश्चंद्रने अक्षत प्रक्षेप करके मुशलप्रहार किया। पहले प्रहारसें उस देवीके मकान कांप उठे। दूसरे प्रहारसें देवीकी मूर्ति स्थानभ्रष्ट हुई। और सूरीश्वरके पाओंमें पडकर दीनता दिखाने लगी और बोली हे स्वामिन्! हे योगीश्वर! वज्र जैसे कठिणप्रहारसे हमारा रक्षण करो। आप परम दयालु हैं हमारा अपराध क्षमा करें। इसतरह निर्दोष विद्याके बलसें सैंधवी देवी, जिनमें अग्रेश्वरी थी उन सर्वके दोषकों गुरुमहाराजने निवारण किया मंत्रीका शरीर सर्वथा स्वस्थ हुआ। और सूरिजी श्रीमुनिसुव्रत स्वामीके मंदिरमें जाकर उल्लासपूर्वक इसप्रकार प्रभुकी स्तवना करने लगे—

संसारार्णवसेतवः शिवपथःप्रस्थानदीपांकुरा
विश्वालंबनयष्टयः परमतव्यामोहकेतुद्रुमाः।

किंवास्माकं (?) मनोमतंगजदृढालानैकलीलाजुष-
स्त्वायंतां नखरश्मयश्चरणयोः श्रीसुव्रतस्वामिनः॥१॥
इत्यादि मनोहर काव्योंसें जिनेंद्रकी उपासना करके, और आम्रभटको जलसिंचन द्वारा सचेतन करके सूरिराज स्वशिष्यकों साथ लेकर पीछे आकाशरास्ते उडकर क्षणमात्रमें पाटण आ पहुंचे।

एक समय चौलुक्यपतिने सपाद लक्षके राजाको आज्ञा की कि—पूजासमयमें पहरने वास्ते उत्तरासन-वस्त्र हमको भेजा करो, क्यों कि ये वस्त्र तुमारे वहां बनते हैं। उसने इस बातकों कथंचित्भी स्वीकार न किया। उलटी कुमारपालकी हांसी की। इससे राजाको बडा क्रोध आया, और उसे वश करने वास्ते उदयन मंत्रीके तीसरे पुत्र चाहडकों फौज देकर भेजा। यह मंत्रीपुत्र बडा दानेश्वरी था, इसने जब पाटणसें प्रयाण किया तो रास्तेमें बहुत याचक एकठे हुए देख खजानचीसें एक लाख रुपया मांगा। राजाकी मनाई होनेसें उसने रुपया

नहीं दिया। इससे चाहडको गुस्सा आया और खजानचीकों चाबुक मारकर लश्करसे निकाल दिया। पीछे मांगनेवालोंकों खूब दान देकर खुश किया। और एक एक सांढणीपर दो दो सवार बैठकर चौदसौ सांडणी और २८ सौ सुभटोंको लेकर अविच्छिन्न प्रयाणोंसें 'बिंबेरा' नगर, जो शत्रुकी राजधानी थी, उसके बाहेर आकर पडाव डाला। उस दिन नगरमे सातसौ लडकियोंके विवाह थे इस लिये रातकों बाहर ही रहे। सुबह नगरकों घेराडाल कर शहरकों सर किया। उसमें उनकों सात क्रोड अशरफीयें और ११ हजार घोडियां मिली मंत्री-पुत्रने उस नगरके किलेकों उडा दिया और सब जगह अपने स्वामी कुमारपालकी आज्ञा फैलाई। राज्याधिकारी सब नये दाखल किये बाद सातसौ चतुर सालवियोंकों[1] साथ लेकर, मंत्रीपुत्र चाहड-

(१) कपडा बुननेवालोंकी एक जाति जो कि आज भी पाटणमें मौजूद है।

पाटण आया और हर्षपूर्वक सभामें आकर राजाको नमस्कार किया। राजाने उसे वहादूर और स्वामी भक्त जाणकर वडा सन्मान दिया। परंतु उसकी अति दानदेनेकी प्रकृतिको याद करके कहा तुमारेमें सव गुणोंके होनेपरभी सूक्ष्म विचारकी खामी है! नहिं तो जो काम तुम कर सक्तेहो वह मैं या मेरा कोईभी आदमी नही कर सक्ता। चाहड इस वातकों सुनकर जरा हस कर वोला महाराज! आपने ठीकही कहा है आप मेरी तरह खरच करनेकों समर्थ नही, क्यों कि मेरे सिरपर तो आपहैं, आपके बलसें मन माना खरच करता हूं। परंतु आप किसके बलसे करे? राजा इसकी वचनचातुरीसें प्रसन्न हुआ, और मंत्रीपुत्रको राजघरहट्ट" का खिताव देकर विदाय किया! इसका चौथा भाई सोल्लाकभी वडा हुश्यार और राजभक्त था, इस वास्ते राजाने उसे "सामंत मंडलीसत्रागार"का खिताव दियाथा।

कोईएक समय श्रीहेमाचार्यजी महाराजने कुमार-पालको उपदेश किया कि, पूर्वकालमें राजगृहनगरका राजा श्रेणिक जो कि भगवान् महावीरके सर्व श्रावकोंमें प्रधान था, वह निरंतर सोनेके १०८जवोंसें परमेश्वरकी पूजा किया करता था। ऐसा कहनेसें उस श्रद्धाशाली राजाने तीर्थंकरनाम कर्म उपार्जन कियाथा। द्वारिकाधिपति श्रीकृष्ण वासुदेवने अनेक मुनियोंसहित बावीशमें तीर्थंकर श्रीनेमीनाथजीकों वंदन करके क्षायिक समकित तथा तीर्थंकर गोत्र उपार्जन किया था। और सातमी नरकके दलिये खपाकर तीसरी तक पहुंचाये थे। श्रेयांस, सुदर्शन, ऋषभदेव-प्रभु तथा भरतचक्रवर्ति इन्होंने दान, शील, तप, और भावनाका अभ्यास करके तथा कामदेव श्रावकने धर्म्मे पूर्ण श्रद्धा रखकरके स्वकार्य सिद्ध कियाहै। हे विचारशील चौलुक्य! तुमभी उन पुरुषोंका अनु-करण करके अरिहंत प्रभुकी पूजा, चारित्रपात्र गुरु-ओंकी उपासना, और, दानादिधर्मका अभ्यास करके

स्वकार्यको शीघ्र साधो। यह मनुष्यभव वारंवार प्राप्त होना बहुत मुश्किल है।

निर्मलबुद्धि—कुमारपालने अमृतके समान गुरुउपदेशसें प्रभुकी पूजा, गुरुमहाराजकी भक्ति और स्वधर्मी वात्सल्य आदि शासनोन्नतिकारक कार्य विशेषतया करने शुरु किये। कोई एक समय जिनपूजनमें सावधान हुआ राजा अनेक प्रकारके फूलोंसे अंगपूजा करके, आरतीसमय, प्रभुसामने खडा था। उससमय परमभक्त उस राजाको अत्यंत सुंदर रची हुई पूजा देखकर भी यथार्थ आनंद न हुआ क्योंकि उसमें पुष्पोंकी न्यूनता थी। इससें वह विचार करने लगा कि चंद्रमंडल जैसा मंदिर बनवाया परंतु सर्व ऋतुसंबंधि फूलोंके विना मेरे चित्तका उत्साह पूरा न हुआ। अहो सर्व सामग्री कोई पुन्यवानकोंही मिल सक्ति है मुझ भाग्यहीनको सर्व अनुकूल सामग्री कहां ?

इस तरह राजाकी ऐसी एकांत भक्तिको देखकरके शासनदेवीने आकाशमें खडे होकर कहा हे चौलु-

क्यपति ! तूं जरा मात्रभी अफसोस न कर। तेरी श्रद्धाको अभंग रखनेवास्ते नंदनवनके समान बगीचा तैयार कियाजावेगा। यह कहकर देवी अदृश्य होगई। और कुमारपालने बाहर आकर देखा तो देववन जैसा सुंदर मनोहर बगीचा नजर आया। इस बगीचेके चारों तर्फ देवता पहरा देते थे, उसमें समय समय उल्लासको प्राप्त होते हुए सर्व ऋतुओंके फूल दृष्टिगोचर होतेथे। इससें कुमारपालकी इच्छा सफल हुई और अत्यंत आनंदसे जिनार्चा कर स्वजन्मको कृतार्थ मानने लगा। श्रीजिनपतिकी भक्तिका इसप्रकार साक्षात् फल देखकर देवबोधि आदि अन्यमतावलंबी धर्मगुरुओंनेभी श्रीजैनशासनकी प्रशंसा की। और इस बातको अच्छीतरह स्वीकार किया कि, इहलौकिक तथा पारलौकिक सुखोंको देनेवाला श्रीजैनधर्मही सर्वधर्मोंमें प्रधान है।

अन्यदा श्रीहेमसूरिमहाराजने व्याख्यानद्वारा यह शिक्षा फरमाईकि, हे राजन्! जो प्राणी धर्म करता है

वहही अगाध संसारसमुद्रको तरताहैं, और उस धर्मके दो भेद हैं उसमेंसें पहला क्षांती, आर्जव आदि भेदोंसें दश प्रकारका है। और उसके अधिकारी सर्व विरति, ब्रह्मचारी साधु हैं। दूसरा धर्म १२ व्रतरूप है, इसके अधिकारी गृहस्थ हैं। यह दोनोंही धर्म मुक्तिके साधन हैं, और इनकी निर्मलता सम्यक्त्वपर है। सम्यक्त्व श्रद्धाकाही अपरनाम है। वह श्रद्धाभी कदाग्रहरूप नहीं परंतु, 'सत्यको सत्य, और असत्यको असत्य' समझना इसरूप होनी चाहिये। सम्यक्त्वके प्राप्त होनेपर जीवका इरादा शुद्ध रहता है। इसवास्ते सम्यक्त्वधारी जीव नरकगतिमें नहीं जाता, मनुष्यगति, देवगति सम्यक्त्वधारीको कुछभी मुश्किल नही हैं। यावत् निर्वाण गमनमेंभी सम्यक्त्व ही आद्यकारण है। जैनशासनमें श्रद्धापूर्वक कीहुई क्रियाही यथार्थ फलकों देनेवाली बतलाई है।

सम्यक्त्वकी निर्मलतासेही व्रतग्रहण करनेका परिणाम होताहै। वह व्रत श्रावकके १२ हैं। जिसमेंसें

क्यपति ! तूं जरा मात्रभी अफसोस न कर। तेरी श्रद्धाको अभंग रखनेवास्ते नंदनवनके समान वगीचा तैयार कियाजावेगा। यह कहकर देवी अदृश्य होगई। और कुमारपालने वाहर आकर देखा तो देववन जैसा सुंदर मनोहर वगीचा नजर आया। इस वगीचेके चारों तर्फ देवता पहरा देते थे, उसमें समय समय उल्लासको प्राप्त होते हुए सर्व ऋतुओंके फूल दृष्टिगोचर होतेथे। इससें कुमारपालकी इच्छा सफल हुई और अत्यंत आनंदसे जिनार्चा कर स्वजन्मको कृतार्थ मानने लगा। श्रीजिनपतिकी भक्तिका इसप्रकार साक्षात् फल देखकर देवबोधि आदि अन्यमतावलंबी धर्मगुरुओंनेभी श्रीजैनशासनकी प्रशंसा की। और इस बातको अच्छीतरह स्वीकार किया कि, इहलौकिक तथा पारलौकिक सुखोंको देनेवाला श्रीजैनधर्मही सर्वधर्मोंमें प्रधान है।

अन्यदा श्रीहेमसूरिमहाराजने व्याख्यानद्वारा यह शिक्षा फरमाईकि, हे राजन्! जो प्राणी धर्म करता है

करनेसें तीन भवका पुन्य नष्ट होता है। दूसरेके शरीरपर घाव करनेसें सौ भवका पुन्य नाश होता है। माताके आग्रहसें आटेके कुकडेकी हिंसा करनेवाला यशोधर राजा दुरंत दुःखकों प्राप्त हुआ है। इसवास्ते कल्याणकी इच्छावाले प्राणीकों चाहिये कि दावानलसमान हिंसाका सदा त्याग करे। और अनंत सुखके देनेवाली दयाका सर्वादरसें पालन करे॥

(दूसराव्रत, सत्यवचन)

इसभवमें और परभवमें अपमान और अविश्वास रूप फल समझ करके धर्मप्रियको असत्य वचनका त्याग करना चाहिये। एकतर्फ असत्य भाषणका पाप और दूसरीतर्फ अन्यपापाचार; इन दोनोंमें असत्यका पाप ज्यादा दुःखदाई है। अन्यशास्त्रोंमेंभी लिखा है कि, एकतर्फ १००० अश्वमेध और एकतर्फ सत्यव्रत; इनमें सत्यव्रतका ज्यादा फ़ल शास्त्रकार फ़रमाते हैं। सिर्फ एकदिन असत्य भाषण करनेसे वसुराजा सातमी नरकका अतिथि हुआ था।

सत्य बोलना और हितकारी बोलना परंतु असत्य कदापि न बोलना। शास्त्रकारोंका फरमान है कि परिणाममें सुंदर ऐसा कटुक शब्द बेशक बोलो, परंतु परिणाममें दुःखदाई और स्वपरका घातक ऐसा प्रियभी न बोलो। निष्कारण कठोर वचन, चुगलखोरीका वचन, रागद्वेषकी वृद्धिका कारणभूतवचन, आत्मस्तुति परनिंदारूप वचन, इन सर्वका त्याग करके सत्य और सरल वचन बोलनेकी सदा आदत (टेव) रखनी उचित है।

(अदत्तादानविरमणव्रत ३)

जिसकी, बुद्धि परधन हरणेकी होती है उसको प्रतिभव दूसरेकी नोकरी उठानी पडती है। चोर आदमी इस जन्ममें अविश्वास अनादर और भवान्तरमें दारिद्र दुर्गतिके दुःखोंका भोक्ता होता है। परद्रव्यके चुरानेवालेके दान, शील, तप, और भाव सर्व निरर्थक होते हैं। चोरीमें मारनेसेभी ज्यादा पाप है

क्यों कि मारनेसे तो एक मरताहै, और चोरीसे, धनके साथ संबंध रखनेवाले समुदायका नाश होनेका भी संभव है। चोरीका त्याग करनेसें रोहिणीया चोर देवर्द्धिकों प्राप्त हुआ। इस दृष्टांतसें धर्माभिलापीको सदाकाल स्ववस्तुसे इतरको देखकर गृद्धिभाव न करना चाहिये।

कुलीन पुरुष प्राणांतमें भी परधन हरण और परस्त्रीगमन नही करते हैं। धान्यका व्यापारी जैसे दुष्कालको, व्यभिचारणी पतिके घातको, वैद्य धनाढ्यरोगीको, नारद लडाईको, दोपग्राही परछिद्रको और डाकन दूसरेके छलकों देखते और चाहते हैं, वैसेही राजालोग धनवानका अपुत्रीया मरजानाही चाहते हैं।

(परस्त्रीका त्याग और स्वस्त्रीसंतोष ४)

धर्म्मार्थीको चाहिये कि परस्त्रीका त्याग करे। जगत्में अपकीर्ति, कुलका क्षय और दुर्गतिमें गमन यह सब फल परस्त्रीगमनके हैं। अपनी, पराइ, निवाही

और कुंवारी यह ४ ही प्रकारकी स्त्रीमेंसे, अपनी स्त्रीसे अतिरिक्त सर्व स्त्री, धर्मप्रियको माता बैन समान समझनी चाहिये । जो गृहस्थी स्वदारसंतोषी होकर परस्त्रीत्यागी रहता है वह सदा ब्रह्मचारीकी गिनतीमें है । लौकिकोक्तिभी है कि, "एकाहारी सदाव्रती । एकनारी सदा यतिः" धर्मशास्त्रोंका फरमान है कि,

सतीनां गुणवदान्यानां, साधूनां ब्रह्मचारिणां ।
महिमानमिव द्रष्टुं, रविरायाति नित्यशः ॥ १ ॥

जो धर्मशील पुरुष मनकरकेभी परस्त्रीको नहि चाहते हैं उन्हीके प्रभावसे पृथ्वी लोकको धारण करती खडी है । परस्त्रीसंगकी इच्छामात्रसे ही रावण चौथी नरकका अतिथि हुआ है इसवास्ते भवभ्रमणकी भीतिवाले विद्वान्को योग्य है कि भीष्मपितामहवाली वृत्तिकों धारण करके सदा ब्रह्मचर्य पाले, अगर ऐसा न कर सके तो केवल स्वस्त्रीमेंही संतोष माने ॥

[अपरिमित परिग्रहका त्याग ५ और इच्छाका परिमाण ।]

जिसका मन धनउपर दृढतर लगा है वह प्राणी-कृत्याकृत्य, पुन्यपापको सर्वथा भूल जाता है और यह तो प्रत्यक्ष है कि कोटिउपायसेंभी संचय किया हुआ धन स्वमनको परितोषका देनेवाला नहीं है। संपादन, रक्षण और नाश ये तीनोंही अवस्था धनकी क्लेशके करनेवाली हैं। संसारका मूल आरंभ है और उसका मूल परिग्रह है। जिसके अंतःकरणमें लोभ अधिक होताहै, वह आरंभभी ज्यादा ही करताहै और ज्यादा आरंभ यह दुर्गतिका हेतु है। एतावता शास्त्रकारका उपदेश यहही है कि ज्यों बने त्यों सांसारिक भावोंसे इच्छाको रोकना अगर हजारसे स्वकार्यका निर्वाह होता है तो लक्षके वास्ते क्यों भटकना? असंतोषी प्राणीको त्रैलोकीका राज्य मिलनेपर भी संतोष नही होता। [illegible]णातसमनवालेका [illegible]दम कदममें अपमान

होता है, तृष्णाके प्रवाहसे खेंचाया हुआ विचारा मम्मणशेठ क्रोडो कष्टोंसे उपार्जन किये हुए क्रोडो-रुपयोंके धनको छोडकर नरकमें चलागया। इस-वास्ते सुखार्थी प्राणीको हमेशा चाहिये कि इच्छाके पराधीन न होवे और उसे स्वाधीन करके शाश्वत सुखको प्राप्त करे।

(दिग् व्रतका स्वरूप और अधिक दिशामें जानेका त्याग। ६)

दशदिशाओंमें गमन करनेकी मर्यादा करनी, इस व्रतको दिग्व्रत कहते हैं। प्रमादी जीव सर्व दिशाओंमें होते हुये पापका कारण होता है। लोभसें पराभवकों प्राप्त हुआ मनुष्य तीनोंही जगत्में गमन करनेकी इच्छा करता है।

इस वास्ते धर्मार्थीकों ऐसा नियम होना चाहिये कि "मैं व्यापारनिमित्त इतने योजनसें ज्यादा नही

जाउंगा" और चउमासेमें भूमि त्रसाकुल होनेसें सर्वथा धर्मकार्यके विना गमनागमन न करना चाहिये। कहा है कि,

"दयार्थं सर्वजीवानां, वर्षास्वेकत्र संवसेत्"

पूर्व कालमें श्रीनेमिनाथ स्वामिके उपदेशसें कृष्ण वासुदेवने चउमासेमें द्वारिका नगरीके वाहिर जानेका पचक्खान कियाथा।

(७ मां भोगोपभोग व्रत)

जो वस्तु एकदफा काम आती है वह भोग, और दूसरी उपभोग। भोगमें भोजन कुसुम फल दुग्धादि गिने जाते हैं। उपभोगमें स्त्री वस्त्रादि इनका समावेश होता है। शक्तिअनुसार जो नियम कायम करना सो भोगोपभोग व्रत है।

दयालु मनुष्यको उचित है कि २२ अभक्ष और ३२ अनंत कायका त्याग करें और शेप उचित वस्तुओंका परिमाण करें।

(अनर्थदंडका त्याग ८)

आर्त और रौद्रध्यान । हिंसाके करनेवाले शस्त्रादि दूसरेकों देना, पापके कामका उपदेश करना घी, तेल, पानी, दुध आदि के वर्तनोंको खुल्ले रखने, यह विना ही अर्थ (प्रयोजन) के पापाचरण है। इस लिये यह अनर्थ दंड कहा जाता है, इस कामका न करना यह धर्मी श्रावकका आठमां व्रत है।

(९ मा सामायिक व्रत)

मन, वचन और कायाके अशुभ व्यापारोका त्याग और पापरहित व्यापारका सेवन करना, दो घडीपर्यंत समतामें रहना इसका नाम सामायिक है। आगमका फरमाना है कि सर्व पापके कार्योंका त्याग करनेवाला, ३ गुप्तिकों धारण करनेवाला, छकायकी रक्षा करनेवाला, और शुद्ध उपयोगमें वर्त्तनेवाला जीव सामायिकस्थ गिणा जाता है।

(देशावकाशिक नामा १० मां व्रत)

छट्ठे दिग् व्रतमें जो परिमाण किया हुआ है उसमेंसे दिनमें और रात्रिमें जो कमती करना, जैसे कि दिग् व्रतमें सारी उमर वास्ते ऐसा नियम लिया है कि, १०० योजनसें ज्यादा न जाऊंगा, तो आज सौ योजन जानेकी मरजी न होवे तथा केवल १० ही योजनेसें प्रयोजन सरता होवे तो केवल १० योजन खुले रखकर नवसो नव्वे योजनका आजके दिनवास्ते त्याग करे। "धर्मके वास्ते जहां जाना होवे बेशक जासकूं ऐसी धारणा रखे"।

(पौषधोपवास नामा ११ मां व्रत)

अष्टमी, चतुर्दशी आदि पर्वदिनोमें, अथवा जिस दिन अपनी भावना होवे उस दिन आहारका, शरीरकी शोभाका, मैथुन (स्त्रीसेवन) का और पापके व्यापारोंका, त्याग करना, इसे शास्त्रकार

---

१ चारकोसकों योजन कहते हैं

(अनर्थदंडका त्याग ८)

आर्त और रौद्रध्यान । हिंसाके करनेवाले शस्त्रादि दूसरेकों देना, पापके कामका उपदेश करना घी, तेल, पानी, दुध आदि के वर्तनोंको खुल्ले रखने, यह विना ही अर्थ (प्रयोजन) के पापाचरण है। इस लिये यह अनर्थ दंड कहा जाता है, इस कामका न करना यह धर्मी श्रावकका आठमां व्रत है।

(९ मा सामायिक व्रत)

मन, वचन और कायाके अशुभ व्यापारोका त्याग और पापरहित व्यापारका सेवन करना, दो घडीपर्यंत समतामें रहना इसका नाम सामायिक है। आगमका फरमाना है कि सर्व पापके कार्योंका त्याग करनेवाला, ३ गुप्तिकों धारण करनेवाला, छकायकी रक्षा करनेवाला, और शुद्ध उपयोगमें वर्त्तनेवाला जीव सामायिकस्थ गिणा जाता है।

(देशावकाशिक नामा १० मां व्रत)

छट्ठे दिग् व्रतमें जो परिमाण किया हुआ है उसमेंसे दिनमें और रात्रिमें जो कमती करना, जैसे कि दिग् व्रतमें सारी उमर वास्ते ऐसा नियम लिया है कि, १०० योजनसें ज्यादा न जाऊंगा, तो आज सौ योजन जानेकी मरजी न होवे तथा केवल १० ही योजनेसें प्रयोजन सरता होवे तो केवल १० योजन खुले रखकर नवसो नव्वे योजनका आजके दिनवास्ते त्याग करे। "धर्मके वास्ते जहां जाना होवे वेशक जासकूं ऐसी धारणा रखे"।

(पौषधोपवास नामा ११ मां व्रत)

अष्टमी, चतुर्दशी आदि पर्वदिनोंमें, अथवा जिस दिन अपनी भावना होवे उस दिन आहारका, शरीरकी शोभाका, मैथून (स्त्रीसेवन) का और पापके व्यापारोंका, त्याग करना, इसे शास्त्रकार

---

१ चारकोसको योजन कहते हैं

पौषध कहते हैं। इस व्रतमें जितना समय जाता है विद्वान् उसे चारित्रका काल कहते हैं।

(अतिथिसंविभाग नामा १२ मा व्रत)

जो महात्मा सर्व तिथि और पर्वोंका त्याग करके दीक्षाका स्वीकार करते हैं वे अतिथि कहे जाते हैं, और शेष भिक्षुक अभ्यागत कहलाते हैं।

अतिथियोंको शुद्ध अन्न पाणीका देना वह अतिथिसंविभागव्रत कहा जाता है। साधुमुनीराजका योगहोनेपर गृहस्थीकों उचित है कि उनकों श्रद्धा, सत्कार पूर्वक अन्न देकरके पीछे स्वयं खावे। साधुके अभावमें समानधर्मीकी भक्ति करे।

हे राजन्! जो मोक्षार्थी भव्य प्राणी इन द्वादश-व्रतोंका सेवन और पालण करता है सो अवश्यमेव संसारको तर जाता है, उक्त प्रकारसें गुरुमहाराजके मुखसें धर्मके मर्मकों सुनकर चौलुक्य मणि श्री कुमारपालमहाराजने सम्यक्त्वमूल द्वादशव्रतोंकों,

अंगीकार किया। परम दयालु राजाने कर्णाटक १ गुजरात २ कोंकण राष्ट्रकीर ४ जालंधर ५ सपाद लक्ष ६ मेवाड ७ द्वीप ८ और भीर आदि अपनी मातहद (सत्ता) के १८ देशोंमें अमर पटह बजवायाथा काशी वगैरह १४ देशोंमें दान विनय बल और मैत्रीसे जीव दयाका पालण करायाथा, 'छाणेविना पाणी कोई न पीवे, जुं और कुंथु जैसे छोटे जानवरकोंभी कोई न मारे.' ऐसा सक्त हुकम कियाथा। राज्यादिककी अधिष्ठाइकाकोंभी बलीदानमें मांसका निषेध वगैरह दयाके कार्योंसे यह राजा श्रेणिकादिसेंभी ज्यादा उपयोगी हुआथा। इस विषयमें अत्यंत प्रसन्न होकर सूरिजीने इस तरह राजाकी स्तुति कीथी, छखंडका स्वामी भरत चक्रीभी जो कामकरनेमें असमर्थ था वोह काम इस धर्मात्माने कर दिखायाथा, धर्मशील परमार्हत भूपति महान् कष्ट आनेपरभी असत्य नहीं बोलताथा, तीसरे व्रतकी रक्षामें परधनकी चोरी तो क्या परंतु अपु-

त्रका धनभी नही लेताथा, एक समय सभामें विराजमानराजाके पास नगरके ४ शाहुकार आये, प्रणामपूर्वक उनके बैठने पर उनकी आकृति शोकातुर मालूम होनेसें राजाने पूछा क्युं शेठजी उदास क्युं? शाहुकार हाथ जोडकर—साहेब आपके राज्यमें उपद्रवका तो नामभी सुना नहीं जाता परंतु भावी बलवान है आपके नगरके अलंकारभूत स्वर्णकोटिध्वज कुबेरदत्त शेठका अकस्मात् परदेशमें मृत्यु हुआ सुनाहै, उसकी औलाद (संतान) नहीं है इस लिये प्रार्थना है कि आप श्रीजी उसके धनको ग्रहण करें तो उसकी पाश्चात्त्य क्रिया की जावे। राजा-आश्चर्यपूर्वक उसकी मिलकत कितनी है? शाहुकार-साहेब बहुत है, यह सुनकर दयालु राजा मनमें विचारने लगा कि, क्रोडों कष्ट उठाकर एकठा किया हुआ धन जो अपुत्रीयेके मरनेपर स्त्रीकों या उसके मातापिताकों आधारभूत होना चाहिये निर्दय होकरके उसका हरण करना राजाकी कितनी बेइन-

साफी है ? उस विचारसें राजाने कहा मेरे यह धन लेनेका नियम है, तथापि—उसके घरकी हालत देखनेकों आताहुं, पालकीमें बैठ कर राजा कुबेरदत्तके घर आया उसके मकानोंकों देखकर मनमें अतीव आश्चर्य हुआ, सब प्रदेशोंकों देखता हुआ राजा मकानके एक भव्य प्रदेशमें पहुंचा, वोह प्रदेश घर चैत्यालय (पूर्वजास्थान था वहां परमेश्वरकी सुंदर प्रतिमाके दर्शन कर राजा बाहर आताथा कि बारा व्रतोंकी परिमाण पुस्तक (टीप) उसकी नजर पडी, जिसमें पंचमव्रतके वास्ते शाहुकार कुबेरदत्तने ऐसा लिखा हुआथा कि "वैराग्यसें तरंगित मनवाला मैं कुबेरदत्त श्रीगुरुमहाराजके चरणकमलोंमें गृहस्थधर्मके योग्य १२ व्रत अंगीकार करताहुं आजसें लेकर कोई त्रस जीवकी इरादेसे निष्कारण हिंसा न करूंगा झूठ न बोलुंगा चोरी न करूंगा परस्त्रीगमन न करूंगा मांस मदिरा माखण मधु नहीं खाउंगा रात्रीभोजन नही करूंगा पांचवे

व्रतमें ६ क्रोड सोना मोहर ८०० तोला मोति १० अमूल्यमणी २००० खांडी धान्य २००० घडे घी तेल १०००० घोडे १००० हाथी ! ८०००० गाय ५०० हल ५०० दुकान ५०० मकान ५०० जहाज ५०० गाडा इतनी जायादात मेरे बापदादाकी कमाई हुई मेरे घरमें मौजूदहै । आजसें व्यापारमें जो लाभ होवे सो सब शुभ रास्ते खरच करूंगा, इस तरहके कुबेरदत्तके परिमाणपत्रकों वाचकर राजाने आश्चर्यपूर्वक कुबेरदत्तकी प्रशंसा करी । आगे बढकर देखा तो २ स्त्रियें रुदन करती हुई नजर पडी पूछनेसें मालूम हुआ कि इनमें यह कुबेरदत्तकी माता है इसका नाम "गुणश्री" है दूसरी उसकी स्त्री है इसका नाम "कमलश्री" है राजाने उनकों दलासा देकर पूछा कि बहिन ! यह समाचार तुमकों किसने सुनाया ? गुणश्रीने कहा महाराज ! वामदेव नामा कुबेरदत्तका [illegible] उसकी जुबानी हमें यह समाचार मिलाहै [illegible] उसीवक्त वामदेवको

बुलाया और सारा समाचार पूछा, वामदेवने कहा साहेब! हम सब लोग कुबेरदत्तके साथ ५००–५०० आदमीयोंसे भरेहुए ५०० जहाज लेकर देशांतर गयेथे, वहां व्यांपार करनेसें १४ क्रोड सोनैयोंका लाभ हुआ, पीछे लोटते हुए हमारे वाहन चक्रमें पडगये, इससें पहले और भी कोई शाहुकारके ५०० वाहन वहां फसे हुएथे इस बनावसें हम सबकों अत्यंत खेद पैदा हुआ परंतु उपाय कुछ भी हाथ न आनेसें सबके सब लाचार हो गये और जीनेकी आशा सर्वथा छोड बैठे, इतनेमें कोई एक नैमित्तिक नावामें बैठकर वहां आया और आकर हमसें बोला सुनो मैं तुमकों बचनेका उपाय बताता हुं, सबलोग जरा स्वस्थ हुए कुबेरदत्तने सविनय पूछा परोपकारी शेखर! आप कौन हैं? कहांसें आये हैं? और हमारी जान बचानेका आपके पास क्या उपाय हे? नैमित्तिकने कहा "यहांसें नजीक पंचशृंग द्वीप हे मैं वहांका रहीश हुं सत्यसागर नामा हमारे राजाने

पोपट (तोते) के मुंहसें तुमारे कष्टके वृत्तान्तको सुना और मुझे तुमारे उद्धार वास्ते यहां आनेकी आज्ञा करी है अब तुमारे बचनेका रास्ता (उपाय) यह है कि यह जो सामने पर्वत नजर आता है इसमें एक दरवाजा है उस रास्ते होकर जिनचैत्यमें जाओ वहांजाकर नगारा बजाओ उससे वहां बैठे हुए भारंड पक्षी उडेंगे और उनकी पांखोंके वायुसें तुमारे जहाज चलेंगें" हे राजशेखर! उस निमित्तज्ञके कथनानुसार कुबेरदत्तने स्वयं वहां जाकर वैसा किया जहाज फौरन चलकर किनारेपर आलगे इसपर मैं अनुमान करता हुं कि कुबेरदत्त वहांसें जीवता नही निकला होगा क्युं कि साधन विना ऐसे अगाधसागरमेंसें कैसे निकला जावे? इस बातकों सुनकर राजा जब पीछे लोटने लगा तो कुबेरदत्तके मुनीमोंने २० कोटी सुनैये ८ कोटी रुपया हजार तोला रत्न लाकर दिये, परंतु राजाने उन्हे तृणसमान समझकर छोड दिया और गुणश्री आदिको आश्वासन

देकर कहा तुम निश्चिंत रहो कुबेरदत्त अवश्य जीता आवेगा, यह कहकर राजा उनके घरसें बाहर निकलने लगा कि उसी वक्त नवीन स्त्रीके साथ विमानमें बैठकर आकाश रास्तेसें आते हुए कुबेरदत्तकों देखा! कुबेरदत्तने भी नीचे उतरकर राजाकों और माताकों नमस्कार किया। राजा प्रसन्न मुखसें बोला अहो! कुबेरदत्त तों यह आया! कुबेरदत्त हाथ जोडकर राजाके सामने खडा रहा राजा—शेठजी बडी खुशीका समय है आप सुखे २ घर आये। भला उस मंदिरमें आपने कैसे गुजारी? कुबेरदत्त—महाराज! वहां घूमते हुए मैंने एक शून्यनगर और राजमहेल देखा, जब मैं उसके अंदर गया तो वहां एक सुंदर कन्या बैठीथी उसने मुझे स्नेहसें बुलाया, और आदरसे बैठाया, मैंने उसे पूछा सुंदरि! तुं कौन हैं? और यह नगर कौनसा है? उसने जबाव दिया कि यह 'पातालतिलक' नाम नगर है, इसमें 'पातालकेतु' विद्याधर राजा राज्य करताथा, उसकी 'पाताल-

सुंदरी' राणीकी कुक्षीसें पैदा हुई 'पातालचंद्रिका' नामकी मैं पुत्रीहुं। मेरा पिता मांसाहारीहै एक दिन रांधा हुआ मांस बिल्लीनें खराब (जुठा) करदिया और दूसरा मांस न मिलनेसें रसोईयेने मरे हुए बालकका मांस तयार करके उसे खिलायाथा उस दिनसें मेरा पिता उस मनुष्यमांसका लोभी हुआ हुआ प्रजाके मनुष्योंका अन्त करने लगा। आज यह नगर सर्वथा शून्य हो गया है! मनुष्यमांसका व्यसनी मेरा पिता अब यहां स्वार्थ सिद्ध न होनेसें अन्यत्र फिरता हैं! आप जाणते हैं कि व्यसनासक्त मनुष्य सर्वस्वकाभी नाशकर देता है! पातालतिलका मुझसें यह वृत्तान्त सुनातीथी कि उसी वक्त विद्याधर वहां आपहुंचा, उसने खुश होकर अपनी लडकी मुझसें विवाहदी, मैंने थोडा अरसा वहां रहकर उसे प्रतिबोध किया और "पंचेंद्रिवध करनेसें मनुष्य नरकगामी होकर अनंत दुःखोंका भागी होताहै" ऐसा समझाकर उस महापापसें बचाया, मुझे अपना

जमाई और धर्मदाता समझकर विद्याधर स्वकीय विमानमें बैठाकर यहां छोड गयाहै ! और यह "पातालतिलका" जो कि आपके सामने खडी है उसी विद्याधरकी लड़की है ! इस अद्भुत वृत्तान्तकों सुनकर चकित हुआ हुआ राजा बोला हे कुबेरदत्त ! तुमने दूसरोंके प्राणोंकी रक्षा वास्ते अपने प्राणोंकों तृणसमान समझा १ कल्याणीस्त्री प्राप्तकरी २ मांस भक्षी राजाकों धर्मी बनाया ३ और क्षेम कुशलसें घर आये ४ इससें संसारमें क्या क्या लाभ नहीं प्राप्त किया ? धन्य है तुमारे जैसे पुन्यात्माओंकों ! इस प्रकार कुबेरदत्तकी प्रशंसा करता हुआ राजा स्वस्थानपर पहुंचा। कुबेरदत्तभी राजमहेलतक राजाके साथ गया, आज्ञा होनेसें स्वस्थानपर आकर आनंदसें जीवन गुजारने लगा। कुमारपालने राज्य प्राप्तिसें पहेलेही सूरिजी महाराजसें "परनारीसहोदर" व्रत लिया हुआथा, १२ व्रत ग्रहणके पहले राजाकी अनेक राणीयोंथी परंतु व्रत ग्रहण पीछे एक

भोपल देवीही विद्यमानथी, शेष सर्व अल्पायुः होनेसें कालकर गईथी, राजाकी विषयवासना अल्प होनेसें इससेंही संतोष मनाताथा, और वर्षाकाल (चउमासेके ४ मास) सर्वथा त्रिविध ब्रह्मचर्य पालताथा, कितनेक काल पीछे भोपल देवीका भी देहांत हो जानेसें राजाने सर्वथा यावज्जीव ब्रह्मचर्य धारण कियाथा। पांचमें व्रतमें ६ क्रोड सोनैया ९ क्रोड रुपया १००० रत्न ५ लाख घोडा १०००० उंट १००० हाथी ८० हजार गौ ५०० घर ५०० वखारें ५०० गाडा इतना सामान्य परिग्रह रखाथा, सैन्यमें ११०० हाथी ५०००० रथ ११००००० घोडे १८००००० पयादा इससें ज्यादाका नियम कियाथा। छठे व्रतमें चउमासेकी मौसममें पाटणके कोटकी बाहिर न जाना, और शहरमें भी देवगुरुके वंदन पूजन विना व्यर्थ न फिरना, ऐसी प्रतिज्ञा की हुईथी, राजाके इस नियम की खबर सर्वत्र फैल गईथी, इससें गजनीका बाद-

शाह "शिकंदर" चउमासे की मौसममें लडाई करनेकों आया। उसका इरादा यह था कि, राजा चउमासेंमें फौज लेकर सामने नहीं आवेगा और मेरा दाव लगेगा। राजाने जब इस समाचारकों सुना तो उसे बडी चिंता हुई, थोडेसे अपने परिवारकों साथ लेकर गुरुमहाराजके पास गया, और सारी बात सुनाई, गुरुमहाराजने कहा तुम फिकर न करो धर्म खुदही तुमारा रक्षण करेगा, ऐसा कहकर गुरुमहाराजने राजाकों धर्ममें स्थिर करने वास्ते पद्मासन लगाकर कोई देवताका आराधन करना शुरु किया, दो घडी हुई कि आकाशसें उतरता हुआ पलंग राजाके दृष्टिगोचर हुआ आश्चर्यमग्न होकर राजाने पूछा महाराज! यह पलंग किसका है? इसमें कौन सूता है? इतनेहीमें वोह पलंग राजाके पास आगया, गुरुमहाराजने कहा इस [illegible] तुमारा वैरी [illegible] है, हमने मंत्र [illegible] इसकों यहां [illegible] की भी

आंख खुली तो कुमारपाल और हेमचंद्रजीके पास अपना पलंग देखा, आश्चर्यमें आकर सोचने लगा यह कौनसी जगह है? यह राजा कौन है? पाटपर यह महंत कौन बैठा है? इस विचारमें पडे हुए बादशाहकों सूरिजीने कहा क्या देखते हो? यह सर्वशक्तिमान् कुमारपाल भूपाल है। इसके पुन्यके प्रभावसें देवता तुमकों तुमारी फौजमेंसें उठाकर यहां लाया है! अब अगर अपना भला चाहते हो तो इस भाग्यशाली महाराजका शरण ल्यो, यह सुनकर बादशाहने पलंगसें नीचे उतरकर राजा और गुरुमहाराजकों नमस्कार किया और हाथ जोडकर अर्ज की कि, एक दफाकी मेरी भूल माफ करो, फिर ऐसा न करूंगा, राजाने कहा जो हुआ सो हुआ परंतु यदि तुम अपने संपूर्ण राज्यमें प्रतिवर्ष ६ महीने जीवदया पलाना मनजूर करो तो तुमारा छुटका हो सक्ता है, अन्यथा नहीं, इसमें तुमको भी पुन्य होगा इस बातकों सिकंदरबादशाहने खुसीसें

स्वीकार कीया, तब राजा उसे अपने महलोमें लेगया, और खातरपूर्वक भोजन आच्छादन देकर विदाय कीया, उस दिनसें सिकंदरने अपने राज्यमें प्रतिवर्ष ६ मास दया पलाणी शुरु करी इस वनावकों देख-कर लोक खुशीसें बोले.

ईदृग् जगद्गुरुः शक्तिभुक्तिमुक्तिप्रदायकः ।
ईदृग् दृढव्रतो राजा, श्राद्धः काले कलौ कुतः ? ॥१॥

सातमें व्रतमें कुमारपालराजर्षीने २२ अभक्ष और ३२ अनंतकायका सर्वथा त्याग किया हूआथा । तपके पहले दिन तथा पिछले दिनकों वर्जकर शेष दिनोमें एकाशना करनेका भी दृढ नियम रखा हुआथा, अनर्थदंड नाम आठमें व्रतमें सातही व्यसनों का सर्वत्र त्याग कराया था, स्वयं तो राजा खुदही ऐसे पाप नहीं करताथा, विकथा आदि अनर्थकों न सेवन करके राजा देवगुरुकी कथाओंमें वक्त गुजारा करताथा ९ में व्रतमें प्रतिदिन २ सामायक करनेका नियम रखाथा, प्रातःकालके

सामायकमें योगशास्त्रके १२ प्रकाश और वीतराग स्तवके २० प्रकाशोंका स्मरण किया करताथा देशावकाशिक भी उपयोगपूर्वक त्रिकरण शुद्धिसें करताथा, ११ में व्रतमें राजा सर्वपर्वोंमें उपवास करताथा, उपवासके दिनरात्रीकों सर्वथा निद्रा न लेकरके धर्मकथामें ही सारी रात गुजारताथा, बहुत समय कायोत्सर्गसें खडे रहकर और वैसा न बने तब दाभके आसनपर बैठकर प्राणायामकी क्रियामें रात्री व्यतीत किया करताथा, १२ व्रतमें अपने राज्यमें रहनेवाले श्रावकोंसें ७२ लाख रुपये का कर (टेकस) जो कि सर्वसाधारणथा राजाने वोह म्वाफ कर दियाथा, और आभडशेठकों हुकुम कियाथा कि जो श्रावक गरीब हालतसे तुमारे पास आवे उसे १००० सोनेमोहर देनी, वर्ष पीछे जितना रुपया होवे खजानेसें लेजाना, एक वर्षके बाद जब हिसाब मंगवाया तो क्रोड रुपया हुआ राजाने शेठकों रु० देने वास्ते खजानचीकों आज्ञा करी परंतु उसने रुपया लेनेसें इन-

कार किया राजाने पूछा तो शेठ बोला मैं भी स्वधर्मी वात्सल्यका लाभ लेना चाहताहुं राजाने कहा ऐसा करनेपर मेरा १२ मां व्रत कलंकित होता है इस वास्ते यह लाभ मैं कोइकों नहीं देसक्ता सुनकर शेठने रुपया स्वीकार लिया। एक दिन गुरुमहाराजने दानका उपदेश देते हुए फरमाया कि, "सर्व दानोंमें अन्न दान प्रधान है तीर्थंकर देव भी अन्नदाताके सामने हाथ लांबा करते हैं" अनुकंपामें पात्रापात्र देखनेकी जरुरत नहीं है, परंतु सुपात्रदान देनेमें पात्रकी परीक्षा अवश्य करनी चाहिये, उत्तमपात्र साधु है, मध्यमपात्र अनुव्रती है, और सर्वजघन्य पात्र केवल सम्यक्त्वधारी है, सुपात्र और अनुकंपा यह दोनोंही प्रकारसें दिया हुआ अन्नपाणी महाफल वास्ते होता है, इत्यादि उपदेशकों सुनकर राजाने स्वधर्मी वात्सल्य और गरीबोंके दुःखोंको दूर करने वास्ते एक विशाल दानशाला बंधाई, उसकी देखरेखका अखत्यार शेठ नेमिनागके सुपुत्र अभयकुमार श्रीमा-

लीको दिया, राजा उपवासके पारणेके दिन त्रिभुवन-पाल विहारमें स्नात्रके प्रसंगपर आये हुए स्वधर्मी लोगोंके साथ मिलकर भोजन किया करताथा, कोई भी भूखाप्यासा खाली न जावे इस वास्ते भोजनके समय दरवाजे खुल्ले रखवाये जातेथे, इसी तरहसे बारमा व्रत पालते हुए राजाने समानधर्मी लोगोंकी पूर्णबहुमानसें भक्ति की, स्वयं सर्वादरसें इस व्रतको पालते हुए राजाने दानादिद्वारा सहस्रों अन्यधर्मावलंबियोंको भी जैन धर्मके अनुरागी बनाया संक्षेपमें कहजावे तो उसने कलिदुष्टको जीत कर सत्युगकी जागृति करी। एक समय गुरु महाराजने कहा कि हे राजाधिराज! जीनमंदिर १ जिनप्रतिमा २ जिनागम ३ सांधु ४ साध्वी ५ श्रावक ६ श्राविका ७ इस प्रकारसें तीर्थंकरोनें ७ क्षेत्रोंका वर्णन किया है, जिनमंदिरके बनवानेसें सम्यक्त्वकी शुद्धि होती है जिनप्रतिमाके दर्शनसें शय्यंभवसूरि आर्द्रकुमार आदि अनेक जीवोंने

बोधिबीज प्राप्त किया है, प्रभुके शास्त्रके सुननेसें रोहणिये चोर दृढप्रहारी अर्जुनमाली जैसे पापियोंकाभी कल्याण हुआ है, साधु साध्वीकी सेवा करनेसें अनंत जीव संसारसे तरगये हैं, कहा है कि साधूनां दर्शनं पुण्यं, तीर्थभूता हि साधवः। तीर्थं फलति कालेन, सद्यः साधुसमागमः ॥१॥ श्रावक श्राविकारूप क्षेत्रोंका पालन तीर्थंकर देवके उपदेशसें भरत भूपतिने किया है, इस वास्ते हे राजन्! कल्पवृक्ष जैसे नंदनवनमें वृद्धिगत होता है. और शुभ फलोंका जनक होता है—वैसे इन क्षेत्रोंमें किया हुआ पुन्यकार्य वृद्धिगत होकर अक्षय फलकों देनेवाला होता है। इस प्रकार गुरुमहाराजके उपदेशकों सुनकर परमार्हतकुमारपालनें पाटण में २५ हाथ उंचा ७२ जिनालययुक्त "त्रिभुवनपाल" नामसें विहार (मंदिर) बनवाया, और उसमें १२५ अंगुल उंची श्रीनेमिनाथ स्वामीकी प्रतिमा पधराई, देशाटण करते हुए राजाके प्रमादसें १ चूहेकी हिंसा हुईथी. उसके प्रायश्चित्तमें

दयालु भवभीरु राजानें "उंदरविहार" नामसें चैत्य बनाया.

एक समय राजा घेवरोंका भोजनकर रहाथा, उस वस्तुको खाते हुये प्रथमावस्थामें भक्षण किया हुआ अभक्ष याद आया, मनमें विचार हुआ कि जैसे घेवरोंका कट्टक २ शब्द होता है वैसा मिथ्या-दृष्टि अवस्थामें जब मैं मांस खाताथा तब उसका शब्द हुआ करताथा, इस खराब इरादेसें राजाका चित्त उस भोजनसें हटगया और खोटे अध्यवसायके कारणभूत मलीन मनकी निंदा करने लगा, अब इस पापकी शुद्धिके वास्ते सूरिजी महाराजके पास जाकर प्रार्थना की कि स्वामिन्! अज्ञानतासें परिणाम मलिनतारूप इस पापके नाशका उपाय फरमाओ, गुरुने कहा "पत्थरसें दांत तोड दो" गुरुवचनका विश्वासी राजा जब वैसा करने लगा तो गुरुने उसका हाथ पकडलिया, और कहा बस! तुमारा पाप दूर हुआ तो भी धर्मानुरागी राजाने ३२ मंदिर

श्रेणी वंध वंधाये जिनमें २४ वर्तमान तीर्थंकर ६ विरहमालतीर्थंकर रोहिणीसमवसरण अशोकवृक्ष और गुरुपादुकाकी स्थापना करी.

एक समय चौलुक्यपति कुमारपाल सपरिवार गुरुमहाराजकों वंदना करनेवास्ते गया तब श्रीगुरुमहाराज श्रीअजिनाथ स्वामीकी स्तुति करते थे, राजाने मारवाडपर चढाई करी तब रास्तेमें "तारंगा" पर्वत देखाथा उसका महिमा गुरुमहाराजको पूछा गुरुने फरमाया राजन्! यह पर्वत परम पवित्र है, यहां अनंत मुनि सिद्ध पदकों प्राप्त हुए हैं, इसवास्ते इस तीर्थका महिमा शत्रुंजय महातीर्थ जैसा है, राजाने इस वातकों सुनकर तारंगापर्वत उपर २६ हाथ उंचा प्रासाद कराया और उसमें १०१ अंगुल प्रमाण श्रीअजितनाथ स्वामीकी प्रतिमा पधराई, खंभातमें श्रीहेमचंद्रसूरिजीकी दीक्षाके स्थानपर विशालमंदिर वनवाया, और उसमें रत्नमई वीर प्रभुकी प्रतिमा और सुवर्णमयी गुरुमहाराजकी पादुका पधराई, एकसमय राजा

गुरुवंदनकों जा रहाथा, रास्तेमें एक विशाल चैत्य (मंदिर) वनता हुआ देखकर अंदर गया. वहांपर वाहड मंत्री (जो कि इस मंदिरको वनवाता था) राजाके सन्मुख आया, और उसने साथ होकर राजाकों संपूर्ण चैत्य दिखाया, राजा इस मंदिरकी अलौकिक शोभाकों देखकर प्रसन्न मनसें वहां थोडी देर वैठा, इतनेमें नेपालके नरेश तर्फसें श्रीपार्श्वनाथकी चंद्रकांतमयी २१ अंगुलप्रमाण प्रतिमा भेट आई इस चमत्कारी प्रतिमाकों देखकर राजाने वाहड मंत्रीको कहा—मंत्रीराज! आप यदि यह प्रासाद मुझे दे दो तो मैं इस प्रतिमाकों इस दिव्यप्रासादमें पधराउं, इस विषयके वार्तालापकों सुनकर लोकोंनें एक जुवानसें कहा कि "अहो जैन धर्मकी वलिहारी है कि जिसमें राजा भी मंत्रीसें धर्मकी प्रार्थना करता है" !!

जिनागमका आराधन करनेमें तत्पर राजशेखर कुमारपालने २१ ज्ञानभंडार करवाये थे इस भूपतिकों ६३ शलाकापुरुषचरित्र सुननेकी इच्छा होनेसें

गुरुमहाराजने ३६ हजार श्लोक प्रमाण नया ग्रंथ रच्या, राजाने उसकों सोनें चांदीके अक्षरोंसे लिखाया, तयार होजानेसें पट्टहाथीपर पधराकर छत्र चामिरादि ठाटमाठसे महोत्सवपूर्वक धर्मशालामें ल्याकर रखा, वहां सामंत मंत्री आदि मंडलसहित राजाने सुवर्णरत्न और वस्त्रादिसें पूजा करके श्रीगुरु महाराजके मुखसें हर्षपूर्वक आद्योपान्त सुना, इसी प्रकारसें ११ अंग और १२ उपांगकीभी एक एक प्रति सुवर्णादिके अक्षरोंसें लिखाई और गुरुमहाराज के मुखसें सुनी, योगशास्त्र और वीतराग स्तवके ३२ प्रकाश सुवर्ण अक्षरोंसें हस्तपुस्तकरूप लिखाए, और प्रतिदिन मौनपणे उनके स्मर्ण करनेका नियम रखा, गुरुमहाजके बनाये हुए सर्व पुस्तकोंकों लिखानेका नियम धारण किया और ७०० लेखकोंकों बुलाकर काम शुरु कराया। एक समय गुरु महाराजको वंदन करके कुमारपाल लेखकोंके पास गया, और उनको कागजों उपर लिखते हुए देख-

कर गुरुमहाराजसें पूछा कि यह लोग कागजों पर क्युं लिखते हैं? गुरुमहाराज वोले अबी कुछ ताड पत्रोंकी न्यूनता है.

यह सुनकर दुःखपूर्वक राजाने विचार किया कि अहो! गुरुमहाराज हमपर इतना उपकार करके ग्रंथ नये रचते हैं और मैं उनके लिखाने के साधनभी एकठे नहीं करसक्ता !! मेरी श्रद्धा क्या कामकी इस विचारमें आरूढ होकर राजानें गुरु महाराजसें प्रार्थना करी कि "महाराज मुझे उपवासका पचक्खाण कराइये.

गुरुमहाराजने पूछा आज उपवास क्युं? राजा बोला जब ताडपत्र पूरे होंगे तब ही मैं भोजन करूंगा, राजाकी इस प्रतिज्ञाकों सुनकर गुरुमहाराज और सामंत मंत्री आदि बोले राजन्! ताडपत्रोंका स्थान यहांसें बहुत दूर है आपकी यह प्रतिज्ञा कैसे पार पडेगी? ऐसा कहनेपरभी राजाने जोरावरी उपवास करलिया.

अनंतर राजा अपने वनमें आया वहांपर खर ताडके वृक्ष थे उनकी चंदन बराससे पूजा की, और श्रद्धापूर्वक बोला कि "यदि मेरा सन्मान श्रीजैन-धर्मपर परिपूर्ण हैं तो तुम खर ताडोंके पत्र सुकोमल हो जाओ" यह कहकर राजा स्वस्थानपर पहुंचा और वोह रात्री केवल धर्म ध्यान करकेही निकाली धर्म प्रिय राजाके प्रभावसे शासन देवीने उन सर्व वृक्षोंके पत्तोंको कोमल कर दिया! इस बनावकी खबर राजानें सुनी तब बडी खुशी मनाई, ताडपत्र मंगवाकर गुरुमहाराजकों भेट किये, गुरुमहाराजने आश्चर्यपूर्वक पूछा राजन्! यह क्या?

राजाने सभासमक्ष सर्व वृत्तान्त कह सुनाया, सुनकर सर्व जनोंने आनंद मनाया, और उसवक्त गुरुमहाराजनेभी राजाकी और जैनधर्मकी स्तुति की, और प्रसन्नतापूर्वक आशीर्वाद दिया कि, "तुमारे जैसे धर्मानुरागी पृथ्वीमें शाश्वत रहो" गुरु-महाराजके दिये आशीर्वाद तथा शिक्षा वचनोंको

हर्षके प्रकर्षसें स्वीकार कर जिनशासनके अपूर्व वैभवको सुनते हुए राजाने घर आकर आनंदपूर्वक पारणा किया, एकदिन सूरजी महाराज देशना देते थे उसवक्त वहां आये हुए परदेशी श्रावकोंकों सुवर्णके फूलोंसें गुरुचरणोंकी पूजा करते हुए देख राजाने पूछा तुम कौन हो? और कहांसे आये हो? वोह बोले हम परदेशी श्रावक हैं पूर्वकालमें श्रीमहावीर स्वामीके उपदेशसें श्रेणीक[1] जो कुछ कर नहीं सका सो जीवदयारूप पुन्यकार्य जिसके उपदेशसें करनेको आप भाग्यशाली हुए हैं उस गुरुमहाराजके चरण रजसें आत्माकों और दर्शनसें नेत्रोंको पवित्र करनेके लिये यहां आये हैं, इस बातकों सुनकर राजाने प्रसन्नतापूर्वक उन स्वधर्मी जनोंकी सेवा की और अभिग्रह किया कि निरंतर मैंनेभी गुरुमहाराजकी पूजा स्वर्णकमलोंसें करनी, एक समय राजानें गुरुमहाराजसें श्रीशत्रुंजयका माहात्म्य सुना और यात्राका

---

१ मगधका राजा।

ढंढेरा फिराकर; स्वयं संघपतिका पट्टधारण किया, उस संघमें जानेवास्ते कुमारपालके सामंत वाग्भट्टादी मंत्री राजमान्य नगरशेठका पुत्र आभट पट्भाषाचक्रवर्ती श्रीदेवपाल कवी और दानेश्वरीलोगोंमें अग्रेसरी सिद्धपाल और भंडारी कपर्दि पाटणपुरका राणा प्रल्हाद ९९ लाखकी पुंजीवाला छाडा शेठ कुमारपालका भाणेज[1] प्रतापमल्ल १८ सौ शाहुकार श्रीहेमाचार्यादि मुनि और दूररेभी सर्व दर्शनवाले गृहस्थ तथा धर्मगुरु अन्यान्य गाम नगरोंके क्रोडों लोग तयार हुए ११ लाख घोडे ११ सौ हाथी और १८ लाख पयादोंकों साथ लेनेका हुकम होनेसें वोह सब तयार हुए, और याचक लोगोंकी टोलीयोंभी एकठी हुई, इसप्रकारसें अद्वैत यात्रा महोत्सव चलता था इतनेमें जैनधर्मके धोरी राजाने स्वाभाविक रीतीसें यात्राका विधि पूछा तब गुरुमहाराज बोले कि समकितधारी, १ पादचारी, २ सचित्तपरिहारी;

[1] भाणज ।

३ ब्रह्मचारी, ४ भूमिसंथारी, ५ और एकल[1] आहारी, ६ यह छ री, कों शुद्धरीतीसें पालण करके यात्राकरनी यह मुख्य विधि है, मेरुसमान निश्चलचित्तवाले राजानें छ री पालते हुए यात्रा करनेकी धारना की, रास्तमें खुल्ले पाओंसें चलते हुए राजाकों देखकर गुरु महाराजने कहा हे राजेंद्र ! खुल्ले पाओंसें चलते हुए आपकों क्लेश होगा, इसवास्ते योग्य साधनकी योजना करो तो ठीक है, राजा नम्रतापूर्वक बोला हे भगवन् ! पूर्वकालमें परवश होकर पाओंसें थोडा रखडाहुं ? मुझे कर्मकी निर्जराका कारणभूत तीर्थाभिमुखगमन जरामात्रभी क्लेश नहीं देता बलकि अधिकाधिक उत्साह देता है, इसप्रकारसें गुरुमहाराजकों संतुष्ट करके महाराज कुमारपालने गुरुमहाराजके साथही गमन करना शुरु किया, समुदाय ज्यादा होनेसें बालवृद्धसर्वकों अनुकूल पडे इसवास्ते ५-५ कोसके पडांव रखे गये, प्रतिग्राम जिनचैत्योंमें महामहोत्सव कराये जाते थे,

---

१ एकदफा भोजन करना ।

स्वधर्मी लोगसंघकी और संघपतिकी भक्तिमें तत्पर थे, सत्वशाली राजा सर्वसंघालुओंके भोजन करलेनेपर दीन दुःखियोंकी खबर पूछकर सबसें पीछे भोजनकिया करता था.

इस लोकोत्तर उत्साहसें सर्वजीवोंकों आश्चर्य पैदा करता हुआ संघपति कुमारपाल सूरिजी महाराजकी जन्मभूमि 'धंधुका' गाममें आ पहुंचा, वहां अपने बनवाए हुए 'झोलिकाविहार' चैत्यमें स्नात्र ध्वजारोपणादि शुभ कार्य करवाये, और वहांसे अविच्छिन्न प्रयाणोंसें "वल्लभीपुर" की सीमामें जाकर मुकाम किया वल्लभीपुरके पासमें दो पहाडियां सामने सामने थीं उनके मध्यमें गुरुमहाराजने सवेरका पडिकमना किया राजाने उन दोनों पहाडियोंपर मंदिर बनवाकर ऋषभदेव स्वामी और वीर प्रभूकी प्रतिमासें स्थापन करवाई, वहांसें अगाडी चलते हुए "श्रीशत्रुंजय"

---

१ काठियावाडमें पालीताणसें १६ कोसके फांसले पर 'वला' नामसें मशहूर. २ जो आजतकभी मौजूद हैं ।

पर्वतके दर्शन हुए तब संघपतिने सकल संघके साथ गिरिराजकों पंचांगप्रणाम किया, और सोनेके फूलोंसें वधाया, नैवेद्य चढाया, चंदनादिसें अष्टमंगल लिखे, राजपुत्री 'लिलु' प्रमुख और सामंतोंकी स्त्री और लडकियोंनें आनंदपूर्वक गिरिराजकों नमन किया और, अक्षत मौक्तिकोंसें वधाया उस दिन राजा आदि अनेक धर्मात्माओंने उपवास किये। वहांसें चलकर तीसरे दिन पालीताणे पहुंचे, अगले दिन प्रातःकाल परम आनंदपूर्वक तलेटीजाकर गिरिराजकों चैत्यवंदन किया, और गुरुमहाराजकों जमने (दाहिणे)पासे रखकर राजाधिराज कुमारपालने परमपवित्र तीर्थाधिराजपर चढना शुरू किया, रास्तेमें हरएक वृक्ष तथा देवायतनकी पूजा करता हुआ राजशेखर मरुदेवी टूंकमें आया वहांसे श्रीशांतिनाथ स्वामीकी और कपर्दि यक्षकी पूजा करके पहली पोलमें आपहुंचा, वहांपर सर्व याचकोंकों विविध प्रकारका दान देकर श्रीयुगादीश्वर प्रभुके प्रासादके

द्वारपर जाकर उस अग्रद्वारकों सवासेर मोतियोंसे व-धाया, पीछे देवाधिदेवकी प्रदक्षिणाके समय लोकोत्तर रम्यतासें प्रसन्न होकर "राजा वाग्भट्ट" मंत्रीकों बोला हे मंत्रीश्वर ! आपका पराक्रम अद्भुत है, आप खरे खर महापुरुषोंके मान योग्य हैं, सर्व जगत्के आधार-भूत इस तीर्थका उद्धार करके आपहीने पृथ्वीका 'रत्नगर्भा' यह नाम सत्य कर दिखाया है, आप कृपा करके आगे हो जाइए, और मुझे यात्रामें सहाय दीजिये, मंत्रीश्वरने राजाके प्रशंसायुक्त वचनकों सुनकर मस्तक नमाया और छडीदारकी तरह राजा-का हाथ पकडकर सब स्थानोंके दर्शन करवाये इस प्रसंगमें राजानें गुरुमहाराजकों प्रभुकी स्तवना बोलनेकी प्रार्थना की राजाकी प्रार्थना और आत्मो-ल्लाससें गुरुमहाराजने सर्वजनसमक्ष श्रावकोत्तम 'धनपाल' की बनाई हुई 'जयजंतुकप्प' इत्यादि ऋषभपंचाशिकाके काव्योंद्वारा परमात्माकी स्तुति करी, उसे सुनकर राजाप्रमुखने विज्ञप्ति की कि

भगवन्! आप तो स्वयं 'कलिकालसर्वज्ञ' विरुदकों धारण करते हैं तो फिर गृहस्थकी बनाई हुई स्तुतिद्वारा स्तवनकरनेका क्या प्रयोजन?

गुरुने कहा जैसी सद्भक्ति और सद्गुणरचना इस स्तुतिमें गुंथन की है, ऐसी हमारेसेंभी नही की जाति। वहांसे रायण नीचे आये तब गुरुमहाराजने फरमाया कि यह वोह वृक्ष है—जिसके समीप ऋषभदेवस्वामी ९९ पूर्ववक्त समवसरे हैं, इसवास्ते यह वृक्ष सर्वदेव दानव मनुष्य विद्याधरोंकों वंदन पूजन करने योग्य है, इसके नीचे इन्द्रमहाराजकी बनाई हुई यह प्रभुकी चरणपादुका है इस माहात्म्य-सूचक उपदेशकों सुनकर राजाने रायण तथा पादुकाकी मोतियोंसें पूजा करी, इस प्रकारसें तीन प्रदक्षिणा समाप्त करके राजाप्रमुख श्रीआदीश्वर प्रभुके सन्मुख आये, प्रभुके दर्शनसें राजाके मनमें इतना आनंद हुआ कि, जो तीन भुवनके राज्यसें भी दुर्लभ था प्रभुके मुखकमल पर नेत्रोंकों स्थिर

करके क्षणमात्र हर्षाश्रुधाराकों वर्षाता हुआ. राजा निश्चल खडा रहा, तदनंतर गंभीर वाचासें अत्यंत भक्तिगर्भित पद्योंद्वारा परमेश्वरकी स्तवना करने लगा "तथाहि—

य: परमात्मा परमज्योति: परम: परमेष्ठिनाम् ।
आदित्यवर्ण तमस: परस्तादामनन्ति यं ॥ १ ॥
सर्वे येनोदमूल्यंत, समूला क्लेशपादपा: ।
मूर्ध्ना यस्मै नमस्यंति, सुरासुरनरेश्वरा: ॥ २ ॥
प्रावर्तंत यतो विद्या, पुरुपार्थप्रसाधिका ।
यस्य ज्ञानं भवद्भावि-भूतभावाऽवभासकृत् ॥ ३ ॥
यस्मिन्विज्ञानमानंदं, ब्रह्म चैकात्मतां गतं ।
स श्रद्धेय: स च ध्येय:, प्रपद्ये शरणं च तं ॥ ४ ॥
तेन स्यां नाथवांस्तस्मै स्पृहये यं समाहित: ।
तत: कृतार्थो भूयासं, भवेयं तस्य किंकर: ॥ ५ ॥
तत्र स्तोत्रेण कुर्यां च, पवित्रां स्वां सरस्वतीं ।
इदं हि भवकांतारे, जन्मिनां जन्मन: फलं ॥ ६ ॥
क्वाऽहं पशोरपि पशुर्वीतरागस्तव: क्व च ? ।

उत्तितीर्षुररण्यानीं, पद्भ्यां पंगुरिवास्म्यतः ॥७॥
तथापि श्रद्धामुग्धोहं, नोपालभ्यः स्खलन्नपि।
विशृंखलापि वाग्वृत्तिः, श्रद्दधानस्य शोभते ॥८॥
श्रीहेमचंद्रप्रभवाद्वीतरागस्तवादितः।
कुमारपालभूपालः, प्राप्नोतु फलमीप्सितं ॥ ९ ॥

बाद अंदर आकर प्रभुके नव अंगोंपर नवलाखकी कीमतके नव रत्न भेट किये और पूजा करके स्वकीयात्माकों त्रिभुवनपूज्य बनाया, चैत्यवंदन और स्तवनासें धर्मात्मा राजाने संसारमात्रमें दुर्लभ अपूर्व आनंद मनाया, पीछे अठाई महोत्सव कराकर सुवर्णका दंड और ध्वज चढाया।

मंदिरमें पूर्वके राजाओंने चढाई हुई वस्तुओंकों देखकर राजाकों यह भी दृढ निश्चय हुआ कि इस तीर्थकी पहले राजामहाराजाभी पूजा करते आये हैं, इंद्रमाल पहेरने का समय आया, तब उसकी उ-छरामणी (बोली नजराना) में वाग्भट्ट मंत्री ४ लाख

रुपया बोला राजा ८ लाख, मंत्री १६ लाख, राजा ३२ लाख, इस प्रकार इंद्रमालका घी बोला जाताथा।

इतनेमें एक श्रावक जो कि गुप्तदान किया करताथा उसने एकदम आकर सवा क्रोडकी उद्घोषणा की, राजानें कहा इस भाग्यशालीकों आगे लाओ, भूपतिकी आज्ञासें और आह्वानसें वोह महुवा गामका रहनेवाला जगडुशाह साधारण वेशसें आगे आकर बैठा, उसके वेशसें राजाकों शंका पडी इस लिये राजाने कहा पहले द्रव्यका निश्चय करके बोली छोडनी, यह सुनकर जगडुशाह बोला साहेब तीर्थ और धर्म सर्वसाधारण हैं, इस वास्ते यहां हरएक लाभ ले सक्ता है, और जो बोलेगा अपनी शक्ति अनुसारही बोलेगा, यह कहकर सवाक्रोड रुपयेके रत्नोंकों आगे रखदिया, देखकर राजानें खुशी मनाई, और कहा आप हमारे सर्वके मुख्य संघवी हैं, इस वास्ते आप खुशीसें तीर्थमाला लेकर कृतार्थ बनिये, यह कहकर राजानें जगडुशाहकों तीर्थमाला दी।

इसने वोह माला तीर्थभूत अपनी माताकों पहना दी इस शुभ प्रसंगपर और भी अनेकधर्मी धनपतियोंने तीर्थमालाएँ ली, और पवित्र तीर्थपर न्यायोपार्जित लक्ष्मीकों कृतार्थ किया। राजानें इस प्रसंगपर याचकोंको दान दिया, एक कवीनें आकर सूरिजीमहाराजकी चमत्कारी वाक्योंसें स्तवना की, राजाकों वडा आनंद पैदा हुआ कवीकों नव लाख रुपया वक्षीस किया, इस प्रकार शासनोन्नति करते हुए राजानें धीमे धीमे गिरिराजसें नीचे उतरकर पालीताणेमें स्थान किया. केइदिन वहां रहकर गुरुमहाराजकों साथ लेकर गिरनार तर्फ प्रयाण किया. वहांपरभी अनेक धर्मकार्योंसें शासन की अपूर्व प्रभावना की. दूसरे दिन प्रातःकाल गुरुमहाराजके साथ जव राजा गिरनार पर्वतपर चढता है इतनेमें वोह पर्वत कांपा, राजाने मनमें डरकर पर्वतके कंपनेका कारण पूछा तव गुरुमहाराज वोले वृद्ध पुरुषोंका ऐसा कथन है कि, इस पर्वत उपर २ भाग्यशाली साथ नहीं

चढ सक्के, अगर चढें तो उपद्रव होता है, इसवास्ते अपने दोनो साथ नहीं चढें, यह कहकर सूरिजी महाराजने राजाकों आगे जानेकी प्रेरणा करी; राजाने कहा साहेब! मेरे आगे जाने में विनयका भंग होता है, इसवास्ते आप श्रीजी आगे पधारो, यह सुनकर गुरुमहाराज आगे पधारे और राजा सकल संघकों साथ लेकर पीछे चढा, और वहां आनंदपूर्वक लाखों रुपया खरच कर पूजाका प्रारंभ किया. पूजा कार्यकों समाप्त करके राजाने गुरुमहाराजकों पूछा—हे ज्ञानसागर! यह प्रतिमा किसने कब बनवाई है? गुरुमहाराजने गइचउवीसीके सांगर तीर्थंकरके समयसें लेकर सारा हाल सुनाया। अनेक प्रकारके उत्सव करके धर्मप्रियराजानें आत्माकों कृतार्थ किया, बहुत दिनतक वहां रहे और पूजा प्रभावना स्वाधर्मीवात्सल्यसें शासनोन्नति करी, यहांभी मालाके समय उसी पुन्यात्मा "जगडुशाह"ने सवाक्रोड, माणिक्य देकर इंद्रमाला ली

और इंद्रपद्वी धारण की, राजाने तीर्थसंबंधि सर्व कार्य समाप्त करके परमेश्वरके सामने खडे होकर प्रार्थना करी कि हे देवाधिदेव! मुझे केवल तुमाराही शरण है।

तुम मुझपर सदा प्रसन्न रहकर तुमारे स्वरूपकी प्राप्ति दो, हे परमात्मन्! तुमारे गुण अनन्त हैं—इस वास्ते मैं पामर किस प्रकार तुमारी स्तुति करसक्ता हूं?

हे प्रभो! समुद्रको तरनेकी इच्छावालेका जैसे भुजाओंसें समुद्रोत्तरणका प्रयास है वैसाही मेरी जिव्हासें आपके अनंतगुणोंका कथन करना है—तथापि आपहीका फ़रमान है कि "शुभे यथाशक्ति प्रयत्नीयं" ऐसा कहकर राजाने "नेत्रेसाम्य सुधारसैक सुभगे" इत्यादि पद्योंसे परमात्माकी स्तुति की, यहांका रास्ता बहुत विषम था, इसवास्ते सुराष्ट्रके दंडनायक (सेनाधिपति) श्रीमाली श्रीआंबदेव राणाकों कहकर जूनागढ तर्फ नवी पावडीयें करवाइ, वहांसें श्रीसंघकों साथ लेकर राजा देव[1]पत्तन गया,

---

१ प्रभासपाटण.

वहां श्रीचंद्रप्रभुकी यात्रा करी और तीर्थमाला यं-
हांभी १। क्रोडका रत्न देकर "जगडुशाह" ने ही ली।
आश्चर्यसें राजाने पूछा हे श्रेष्ठिवर्य ! वह ३ क्रोड की-
मतके रत्न तुमकों कहांसे मिले ? और तुमारी मूर्च्छा
इनसें कैसे उतरी ? जगडुशाहने कहा महाराज !
महुवा नगरके रहीश मेरे पिता "हंसमंत्री" के पास
उनके बापदादाके रखे हुए ५ रत्न थे, उनका इरादा
संघ निकालनेका था परंतु कालवश होजानेसें वोह
उस कामकों न करसके, परंतु काल करते हुए
उन्होंने मुझे कहाथा कि "बेटा ! ५ रत्नोंमेंसें ३ रत्न
शत्रुंजय गिरनार और देवपत्तनमें खरच करने, और
(२) सें तुमारा निर्वाह चलाना." इस बातकों सुनकर
राजाने हंस मंत्रीकी तथा उसके सुपुत्र जगडुशाहकी
संघसमक्ष प्रशंसा की। वहांसे चलकर रास्तेमें
अनेक प्रकारसें शासनके कार्योंको करते हुए संघ-
पतिकुमारपालने क्षेमकुशलसे आनंदपूर्वक पाटणमें
प्रवेश किया, और मंगलीकवास्ते अठाई उत्सव रचाये

भोजनवस्त्रादिसें स्वधर्मीगणकी भक्ति करी. एकसमय गुरुमहाराज श्रीवीरप्रभुका चरित्र वांचतेथे उसमें ऐसा संबंध आया कि, हे अभय कुमार ! परमार्हत कुमारपाल वीतभयपत्तनसें हमारी प्रतिमाकों पाटण ल्याकर भक्तिसें पूजेगा। तथाही—

पृच्छतिस्माभयोऽथैवं, कपिलर्षिप्रतिष्ठिता ।
प्रकाशमेष्यति कदा, प्रतिमा पारमेश्वरी ? ॥
स्वाम्याख्यातिस्म सौराष्ट्र–लाटगुर्जरसीमनि ।
क्रमेण नगरं भावि नाम्नाणहिल्लपाटकम् ॥
आर्यभूमेः शिरोरत्नं, कल्याणानां निकेतनम् ।
एकातपत्रार्हद्धर्मं तद्धि तीर्थं भविष्यति ॥
चैत्येषु रत्नमय्योर्हत्प्रतिमास्तत्र निर्मलाः ।
नन्दीश्वरादिप्रतिमा–कथां नेष्यन्ति सत्यतां ॥
भासुरस्वर्णकलशश्रेण्यलंकृतमौलिभिः ।
रोचिष्यते तच्चैत्यैर्विश्रान्ततपनैरिव ॥
श्रमणोपासकस्तत्र प्रायेण सकलो जनः ।
कृतातिथिसंविभागो, भोजनाय यतिष्यते ॥

परसंपद्यनीर्ष्यालुः, संतुष्टश्च स्वसंपदा ।
पात्रेषु दानशीलश्च, तत्र लोको भविष्यति ॥
श्राद्धाश्च धनिनस्तत्रालकायामिव गुह्यकाः ।
वप्स्यन्ति द्रविणं सप्तक्षेत्र्यामत्यन्तमार्हताः ॥
परस्वपरदारेषु सर्वः कोऽपि पराङ्मुखः ।
भावि तस्मिन् पुरे लोकः, सुषमाकालभूरिव ॥
अस्मिन्निर्वाणतो वर्षशतान्यभय ! षोडश ।
नवषष्टिश्च यास्यन्ति, यदा तत्र पुरे तदा ॥
कुमारपालो भूपालश्चौलुक्यकुलचन्द्रमाः ।
भविष्यति महाबाहुः, प्रचण्डाखण्डशासनः ॥
स महात्मा धर्मदान—युद्धवीरः प्रजां निजां ।
वृद्धिं नेष्यति परमां, पितेव परिपालयन् ॥
ऋजुरप्यतिचतुरः, शांतोऽप्याज्ञादिवस्पतिः ।
क्षमावानप्यधृष्यश्च, स चिरं क्ष्मामविष्यति ॥
स आत्मसदृशं लोकं, धर्मनिष्ठं करिष्यति ॥
विद्यापूर्णमुपाध्याय इवान्तेवासिनं हितः ॥
शरण्यः शरणेच्छूनां, परनारीसहोदरः ।

प्राणेभ्योऽपि धनेभ्योऽपि, स धर्मं बहुमंस्यते ॥
पराक्रमेण धर्मेण, दानेन, दययाज्ञया।
अन्यैश्च पुरुषगुणैः, सोऽद्वितीयो भविष्यति ॥
स कौबेरीमातुरुष्कमैन्द्रीमात्रिदशापगम् ।
याम्यामाविन्ध्यमावार्धिं, पश्चिमां साधयिष्यति ॥
अन्यदा वज्रशाखायां, मुनिचंद्रकुलोद्भवं।
आचार्यं हेमचन्द्रं सः द्रक्ष्यति क्षितिनायकः ॥
तद्दर्शनात् प्रमुदितः, केकीवांबुददर्शनात् ।
तं मुनिं वन्दितुं नित्यं, स भद्रात्मा त्वरिष्यते ॥
तस्य सूरेर्जिनचैत्ये, कुर्वतो धर्मदेशनाम् ।
राजा स श्रावकामात्यो, वन्दनाय गमिष्यति ॥
तत्र देवं नमस्कृत्य, स तत्त्वमविदन्नपि।
वन्दिष्यते तमाचार्यं, भावशुद्धेन चेतसा ॥
स श्रुत्वा तन्मुखात्प्रीत्या, विशुद्धां धर्मदेशनां।
अनुव्रतानि सम्यक्त्व—पूर्वकाणि प्रपत्स्यते ॥
स प्राप्तबोधो भविता, श्रावकाचारपारगः।
अस्थानेऽपि स्थितो, धर्मगोष्ठ्यां स्वरतयिष्यति ॥

अन्नशाकफलादीनां, नियमांश्च विशेषतः।
आदास्यते प्रत्यहं स, प्रायेण ब्रह्मचर्यकृत् ॥
साधारणस्त्रीर्न परं ससुधीर्वर्जयिष्यति।
धर्मपत्नीरपि ब्रह्मचरितुं बोधयिष्यति ॥
मुनेस्तस्योपदेशेन, जीवाजीवादितत्त्ववित्।
आचार्य इव सोऽन्येषामपि बोधिं प्रदास्यति ॥
येर्हद्धर्मद्विषः केऽपि, पांडुराह्वद्विजादयः।
तेऽपि तस्याज्ञया गर्भश्रावका इव भाविनः ॥
अपूजितेषु चैत्येषु, गुरुष्वप्रणतेषु च।
न भोक्ष्यते स धर्मज्ञः, प्रपन्नश्रावकव्रतः ॥
अमुत्रमृतपुंसां स, द्रविणं न ग्रहीष्यति।
विवेकस्य फलं ह्येतदतृप्ताह्यविवेकिनः ॥
पांडुप्रभृतिभिरपि त्यक्ता या मृगया नहि।
स स्वयं त्यक्ष्यति जनः, सर्वोपि च तदाज्ञया ॥
हिंसानिषेधके तस्मिन्, दूरेऽस्तु मृगयादिकं।
अपिमत्कुणयूकादि, नान्त्यजोपि हनिष्यति ॥

१ साधारणनारीर्वर्जयिष्यतीति केवलेन.

तस्मिन्निषिद्धपापर्द्धावरण्ये मृगजातयः ।
सदाप्यविघ्नरोमन्था, भाविन्यो गोष्ठधेनुवत् ॥
जलचरस्थलचरखेचराणां स देहिनाम् ।
रक्षिष्यति सदाऽमारिं, शासने पाकशासनः ॥
ये वा जन्मादिमांसादास्ते मांसस्य कथामपि ।
दुःस्वप्नमिव तस्याज्ञा–वशान्नेष्यंति विस्मृतिम् ॥
दशार्हैर्न परित्यक्तं, यत्पुरा श्रावकैरपि ।
तन्मद्यमनवद्यात्मा, स सर्वत्र निरोत्स्यति ॥
स तथा मद्यसन्धानं, निरोत्स्यति महीतले ।
न यथा मद्यभांडानि, घटयिष्यति चक्र्यपि[1] ॥
मद्यपानां सदा मद्य—व्यसनक्षीणसंपदाम् ।
तदाज्ञात्यक्तमद्यानां, प्रभविष्यन्ति संपदः ॥
नलादिभिरपि क्ष्मापैर्द्यूतं त्यक्तं न यत्पुरा ।
तस्य स्ववैरिण इव नामाप्युन्मूलयिष्यति ॥
पारापतपणक्रीडा–कुक्कुटायोधनान्यपि ।
न भविष्यंति मेदिन्यां, तस्योदयिनि शासने ॥

---

१ कुलालोपि ।

स प्रायेण प्रतिग्राममपि निःसीमवैभवः ।
करिष्यति महीमेतां, जिनायतनमंडिताम् ॥
प्रतिग्रामं प्रतिपुरमासमुद्रं महीतले ।
रथयात्रोत्सवं सोऽर्हत्प्रतिमानां करिष्यति ॥
दायंदायं द्रविणानि, विरचय्यानृणं जगत् ।
अंकयिष्यति मेदिन्यां, ससंवत्सरमात्मनः ॥
प्रतिमां पांसुगुप्तां तां, कपिलर्षिप्रतिष्ठिताम् ।
एकदाश्रोष्यति कथा—प्रसंगे स गुरोर्मुखात् ॥
पांशुस्थलं खानयित्वा, प्रतिमां विश्वपावनीम् ।
आनेष्यामीति स तदा, करिष्यति मनोरथम् ॥
तदैव मन उत्साहं, निमित्तान्यपराण्यपि ।
ज्ञात्वा निश्चेष्यते राजा, प्रतिमां हस्तगामिनीम् ॥
ततो गुरुमनुज्ञाप्य, नियोज्याऽऽयुक्तपूरुषान् ।
आरप्स्यते खानयितुं, स्थलं वीतभयस्य तत् ॥
सत्वेन तस्य परमार्हतस्य पृथिवीपतेः ।
करिष्यति च सांनिध्यं, तदा शासनदेवता ॥
राज्ञः कुमारपालस्य, तस्य पुण्येन भूयसा ।

खन्यमानस्थले मंक्षु, प्रतिमाविर्भविष्यति ॥
तदा तस्यै प्रतिमायै, यदुदायनभूभुजा ।
ग्रामाणां शासनं दत्तं, तदप्याविर्भविष्यति ॥
नृपायुक्तास्तां प्रतिमां, प्रत्नामपि नवामिव ।
रथमारोपयिष्यन्ति, पूजयित्वा यथाविधि ॥
पूजाप्रकारेषु पथि, जायमानेष्वनेकशः ।
क्रियमाणेष्वहोरात्रं, संगीतेषु निरन्तरम् ॥
तालिकारासकेषूच्चैर्भवत्सु ग्रामयोषिताम् ।
पंचशब्देष्वातोद्येषु, वाद्यमानेषु संमदात् ॥
पक्षद्वये चामरेषूत्पतत्सु च पतत्सु च ।
नेष्यन्ति प्रतिमां तां चायुक्ताः पत्तनसीमनि ॥

॥ त्रिभिर्विशेषकम् ॥

सान्तःपुरपरीवारश्चतुरंगचमूवृतः ।
प्रवेशयिष्यति पुरे, प्रतिमां तां स भूपतिः ॥
उपस्वभवनं क्रीडाभवने संनिवेश्य ताम् ।
कुमारपालो विधिवत्त्रिसन्ध्यं पूजयिष्यति ॥
प्रतिमायास्तथा तस्या, वाचयित्वा स शासनम् ।

उदायनेन यद्दत्तं तत्प्रमाणीकरिष्यति ॥
प्रतिमायाः स्थापनार्थं, तस्यास्तत्रैव पार्थिवः ।
प्रासादं स्फटिकमयममायः कारयिष्यति ॥
प्रासादोऽष्टापदस्येव, युवराजः स्वकारितः ।
जनयिष्यति संभाव्यो विस्मयं जगतोऽपि हि ॥
स भूपतिः प्रतिमया, तत्र स्थापितया तया ।
एधिष्यते प्रतापेन शुद्धया निःश्रेयसेन च ॥
देवभक्त्या गुरुभक्त्या त्वत्पितुः सदृशोऽभय ! ।
कुमारपालो भूपालः स भविष्यति भारते !!! ॥

इत्यादिवाक्योंमें श्रीप्रभुमुखसें अपना नाम उच्चारण किया हुआ सुनकर राजाने अत्यंत हर्ष मनाया और विचार किया कि, धन्य है सर्वज्ञके ज्ञानको ! अपने सामंतोंकों वीतभयपत्तन (भेरा) में भेजकर जीवितस्वामीकी प्रतिमा मंगवाई, और गुरुमहाराज सहित सामने जाकर प्रभुकी प्रतिमाका नगरप्रवेश कराया, स्फटिकरत्नमय प्रासाद कराकर उसमें स्थापन करके त्रिकालपूजा करनी आरंभ की.

राजा सदाकाल प्रातः उठकर पंचपरमेष्ठीका सरण और धर्मके मनोरथ किया करताथा, एक समय राजाकों ऐसा अभिलाष हुआ कि मैं जगतकों अनृण करके अपना संवत्सर चलाउं, इसविषयमें गुरु महाराजकी सलाह लेकर राजाने अपने और श्रीसंघके नामसें (२) विज्ञप्तिपत्र "श्रीदेवचंद्रसूरिजी" (जो श्रीहेमचंद्रसूरिजीके दीक्षागुरु थे) उनको भेजे वोह आचार्य उसवक्त कोई महातप कर रहेथे, तोभी श्रीसंघका पत्र जानेसें "संघका कोई महान् कार्य होगा" ऐसा समझकर पाटण पधारे, इधर गुरुमहाराजसहित सन्मुख जानेका सकल संघने विचार कर रखाथा, परंतु देवचंद्रसूरि तो कोईकोंभी खबर न कहकर शहरमें प्रवेश करगये, राजा सामयेकी सामग्री तयार करताथा. श्रीहेमचंद्रसूरि संघसहित सामने जानेकों तयार होतेथे, इतनेमें गुरुमहाराज उपाश्रयमें दाखल हो गये, सकलसंघने वंदनादि शिष्टाचार करके धर्मदेशना सुनी, देशनाकी समाप्ति होनेपर गुरुमहा-

राजने पूछा हमें बुलानेका क्या काम था ? राजा और हेमचंद्रसूरि दोनोहीने गुरुके चरणोंमें पडकर अपना संवत्सर चलानेवास्ते सुवर्णसिद्धी मांगी। श्रीहेमचंद्रजीने प्रार्थना की कि जिसवक्त मैं बालक था उसवक्त आपके हुकम मूजब एक तांबेके टुकडेउपर आपकी बताई हुई औषधिका रस लगाकर अग्निमें रखनेसें वोह तांबेका टुकडा सोना होगयाथा, उस वनस्पतिका नाम और उसकी पिछान कृपाकर बतावें तो राजाकी इच्छा पूर्ण होवे। इस बातकों सुनकर गुरुमहाराज बडे गुस्से हुए और कहा जा ! तुं अयोग्य हैं ! आगे निर्बलसी विद्या तुझे दीथी सोभी न पची !! अब यह सबल विद्या कैसे पचेगी ? इसप्रकार हेमचंद्रको निषेध करके कुमारपालकोंभी समझाया कि, राजन् ! तुमारा भाग्य ऐसा नहीं कि तुम जगत्कों अनृण करके अपना संवत्सर चलाओ। परंतु हिंसाका निषेध जिनचैत्योंका निर्माण स्वधर्मी वात्सल्य इत्यादि सत्कृत्योंसें तुमारे दोनों लोक सुधरे

हैं, अब ज्यादा इच्छा किसवास्ते रखते हो? इसतरह उनका समाधान करके देवचंद्रसूरिजी उसीवक्त विहार करगये। एकदिन सूरिजी व्याख्यान करतेथे की इतनेमें अपने मनमें कुछ विचार आनेसें अकस्मात् 'हाहा' करके उठ खडे हुए, पासमें देवबोधिभी बैठाथा उसने हाथ घसकर कहा "यह तो कुछ नहीं" इनके इन संकेतमें राजाकों कुछभी खबर नहीं पडी. आश्चर्यसें राजानें गुरुसें पूछा साहेब! आपने परस्पर क्या गुफतगुकरी! गुरुमहाराजने कहा राजन्! देवपाटणमें श्रीचंद्रप्रभुके मंदिरमें दीवेकी वत्ती चूहा लेगया, इसवास्ते चंद्रोओकों आग लग गई, सो हमने देखा, तो हमकों फिकर हुआ, देवबोधिने हाथ घसकर "ऐसी सूचना की कि वोह बुझ गई," राजानें चमत्कारपूर्वक नौकरोंकों भेजकर तालायश कराई, तो वोह बात सर्वथा सत्य निकली, कलिकालमेंभी आचार्य महाराजके इस चमत्कारी ज्ञानकों देखकर राजानें प्रशंसा की, और सर्वज्ञ शासनकी अनुमोद-

ना की. एकदिन राजाने पूछा भगवन्! मैं पूर्वजन्ममें कौन था ? और आगेकों कौन होउंगा ? सिद्धराज मुझपर विनाकारण द्वेष क्युं करताथा ? और उदयन मंत्री तथा आप मुझपर इतना दयाभाव किसकारणसें रखते हो ? यह बात तो निर्विवाद है की, पूर्वभवके संबंधविना कोईकाभी कोईपर स्नेह या द्वेष नहीं होता, आपहीका फरमान है कि,—यं दृष्ट्वा वर्धते स्नेहः, द्वेषश्च परिहीयते। विद्वद्भिः स तु विज्ञेयः, एष मे पूर्वबांधवः॥१॥ गुरुमहाराज बोले हे राजन्! आजकाल अतिशय ज्ञान नहीं है, वीरप्रभुके निर्वाणसें (६४) वर्ष पीछे जंबुस्वामी मोक्ष गये, उनके साथ हीं मनःपर्यव (१) परमावधिज्ञान (२) पुलाकलब्धि (३) आहारकशरीर (४) क्षपकश्रेणी (५) उपशमश्रेणी (६) जिनकल्प (७) उपरके (३) चारित्र (१०) केवलज्ञान (११) और मोक्ष (१२) यह (१२) ही वस्तुए व्यवच्छेद नाश होगई है, १००० वर्ष पीछे सर्व पूर्वोंका ज्ञानभी व्यवच्छेद हुआ है हालतो

श्रुतभी अल्पमात्र है, इससेंही सर्वव्यवहार चलता है, तोभी देवताकी सहायतासें हम कुच्छ कहेंगे, यह कहकर सूरिजीमहाराजने "सिद्धपुर" जाकर सरस्वती नदीके कांठेपर अट्टम (तेले) की तपस्या करके सूरिमंत्रके आद्यपीठकी अधिष्ठायिका "त्रिभुवनस्वामिनी" देवीका आराधन किया, और उससें कुमारपालसंबंधी सर्व समाचार पूछा, देवीने अवधिज्ञानमें उपयोग देकर सूरिजीकों कहा, हे भगवन्! मारवाडदेशके "जयकेशी" राजाका "नरवीर" नाम पुत्र सातव्यसोंकों सेवन करनेवाला था, राजाने उसे अनेक प्रकार समझाया तो भी वोह बुरी आदतसें नहीं हटा, तब राजाने नरवीरकों घरसें निकाल दिया, नरवीर चोरोंकों जा मिला, और डाके धाडे मारकर गुजारा करने लगा, एक समय "जयता" नाम सार्थवाह मालवेसें आताथा, नरवीरने उसे लूटा, जयता दुखी होकर पीछे लोटा, और उज्जयनीके राजाकों जाकर मिला, उज्जयनीके राजासें कुछ फौज

लेकर नरवीरसें लडनेके इरादेसें चढकर आया, नरवीरको येह समाचार मालुम होजानेसें वोह वहांसें उसी वक्त पलायन कर गया, सार्थवाहने उसकी सगर्भास्त्रीकों और उसके पेटसें वाहेर पडे हुए वालककों मार दिया, और पल्लीकों लूटकर मालवदेशके राजापास गया, मालवपतिने जव सुना कि इसने गर्भवती स्त्री और वालककी हत्या की है तो गुस्से होकर उसे राज्यसें वाहर कर दिया, लोगोंनेभी उसके दुष्टाचारपर वारंवार धिक्कार दिया इससें उसे वडा पश्चात्ताप हुआ, और तापसकी दीक्षा लेकर तीव्रतपसें सरकर राजा "जयसिंहदेव" हुआ. पूर्वभवमें दो जीवोंकी हत्या करी थी इसवास्ते यहां इसे संतान नहीं हुआ. नरवीर वहांसे भागा और धनुपवाणकों हाथमें लेकर जंगलमें फिरता हुआ "श्रीयशोभद्रसूरि" जैनाचार्यके पास आया सूरिने उसे उपदेश देकर हिंसारूप पापसें बचाया, और दयाधर्मी बनाया, वहांसे निकला हुआ पृथ्वीमें परिभ्रमण करता

हुआ नरवीर तिलंग देशके "एकशिला" नगरमे आया वहां "ओढर" श्रावकके घर नौकर रहा, ओढरने महावीर प्रभुका वडा विशाल और मनोहर मंदिर वनवायाथा वहां वोह हमेशां पूजा करनेकों जाया करताथा, एक समय पर्यूषणोंके दिन आये ओढर श्रावक सहकुडुंब नरवीरकोंभी साथ लेकर चैत्यमें पूजा करने गया, विधिपूर्वक स्नात्रविलेपन करके ओढरने नरवीरको कहा भाई ! यह फूल आदि सामग्री तयार है, यदि तेरी भावना होवे तो तुं भी प्रभुकी पूजा कर, येह सुनकर नरवीरने विचार किया कि, यह प्रभु सर्व प्रकारके सुखोंके दाता हैं धर्मगुरुओंसें सुनाजाता है कि—

"दर्शनाद्दुरितध्वंसी, वंदनाद्वाञ्छितप्रदः ।
पूजनात्पूजकः श्रीणां, जिनः साक्षात्सुरद्रुमः ॥१॥

दूसरेके फूलोंसें मैं इसप्रभुकी पूजा क्युं करूं? और इसवक्त मेरेपास पांचही कोडी हैं इससेंभी मुझे क्या पूजा सामग्री मिलसक्तीहै? अस्तु तोभी मेरा भाव तो

बडा है यह सोचकर पांच कोडीके फूलोंसें परमात्मा-दपूर्वक आत्माकों कृतकृत्यमानते हुए नरवीरने पुजा की, और उसदिन उपवास भी किया, पारणेके दिन श्रद्धा और भक्तिपूर्वक मुनिकों दान दिया, उसदिनसें नरवीर धर्ममें विशेष दृढ हुआ, और शुभव्यापरसें जीवन व्यतीत करता हुआ अनुक्रमसें समाधि मरणके वंशसें राजा 'त्रिभुवनपाल' का लडका "कुमारपाल" हुआ, और श्री यशोभद्र सूरिजीका जीव तुम "हेमचंद्र" हुए हो, कुमारपाल यहांसें मर-कर व्यंतरजातिका महार्द्धिदेवता होगा, वहांसें इसी भरतक्षेत्रमें "भद्दिलपुर" नगरके राजा "शतानंद" का "शतबल" नाम पुत्र होगा, वहां पिताका राज्य प्राप्त करके "श्रीपद्मनाभ" तीर्थंकरके पास दीक्षा लेकर पद्मनाभ प्रभुका एकादशम (अग्यारमां) गण-धर होगा, इसभवसें तीसरे भवमें परमार्हत कुमारपाल मोक्षपदकों प्राप्त होगा, यह सर्व वृत्तान्त देवीकी जुबा-नसें सुनकर गुरुने राजाकों सुनाया, राजाने परमानंद

मनाया, राजाकों गुरुवाक्यपर पूरा विश्वास होनेपर भी कौतुकसें एकशिला नगरीमें आदमी भेजकर ओढर श्रावक वगैरहके वंशकी खबर पुछाई तो सब बात यथातथ्य मिल आई ! एकदफा रात्रीके समय राजा सुखशय्यामें सूताथा, उसवक्त श्याम रंग और क्रूर आकृतिकों धारण करती हुई एकदेवी राजाके पास आई. राजाने पूछा हे देवी! तुं कौन है? और यहां तेरा आना कैसे हुआ है? देवी बोली मैं "लूता" रोगकी अधिष्ठात्री देवीहुं, तेरे वंशकों पूर्वकालमें सतीका शाप लगा हुआ है इसवास्ते मैं तेरे शरीरमें प्रवेश करूंगी !!! यह कहकर देवी अदृश्य होगई राजाकों बडी चिंता उत्पन्न हुई, गुरुमहाराजकों सर्व समाचार सुनाया गुरुमहाराजने भी मनमें खेदधारण करके कहा राजन्! अवश्य भावी भाव में तीर्थंकर देवकाभी उपाय नहीं—पूर्वकालमें मूलराजकों कमलादेवीने शाप दिया था, उसका यह परिणाम है इसमें मंत्र यां औषधीका जोर नहीं चलेगा

केवल उपाय यह है कि, इसराज्यपर दूसरे आदमीकों बैठाया जावे तो इस रोगका प्रवेश पुरुषांतरमें हो सक्ताहै, और इसयुक्तिसें तुमारा बचाव होसक्ताहै, परंतु यह काम जैनशास्त्रसें विरुद्ध है, प्राण सबके हैं, जान सर्वकों प्यारीहै, दुःखकों कोईभी नहीं चाहता, अस्तु— मैं राज्य गादीपर बैठता हुं तुम निश्चिंत रहो! सूरिजीका यह कथन सुनकर राजाने "हाहाकार" किया, और कहा नहीं नहीं कृपावतार! भस्सकेवास्ते कहीं बावना चंदन जलाया जाताहै? सूरिजीने कहा राजन्! तुम फिकर न करो अगर हमारेमें ताकात नहीं होवे तो तुमारा कहना युक्त है परंतु जैसे हनुमान अपने आपही बंधाया था और स्वयंही छूटगया था वैसे हमभी अपना रक्षण कर सक्ते हैं। इधर राजाके शरीरमें वेदना बढने लगी क्षणमात्रमें राजा बेहोश हो गया गुरुमहाराज सर्व सामंतादिकी सम्मति लेकर राज्यगादिपर बैठ गये, उसी वक्तसें राजाके शरीरसें पीडा घटकर सूरिजीके शरीरमें बढने लगी,

राजाकों होश आइ तब अपने निमित्तसें गुरुमहाराजकों दुःखी देखकर अपना सर्वस्व चुरागया होवे वज्रका प्रहार हुआ होवे ऐसा दुःख मनाने लगा, गुरुमहाराजने कहा तुम चिंता न करो मैं अपना आत्मरक्षण करलिया है, इसलिये मुझे पीडा नहीं मालुम पड़ती "इस राज्यके भोगनेवाले लूता रोगसें पीडित होंगे" यह कमलादेवीका शाप है.

यदि इसकों मूलमेंसें नहीं निकालेंगे तो फिरसें आगे और राजाओंकों दुखदाई होगी, ऐसा विचार कर सूरिजी महाराजने एक कोला मंगवाया और उसमें विद्यासें प्रवेश कर लूताकों वहांही छोड दिया और उसीवक्त सूरिराज स्वाभाविक कांतिवाले होगये उस कोलेकों वहांसें उठवाकर अंधे कुवेमें रखवा दिया इसपर ऐसी मुद्रा दिलाई कि जिससें इसकों कोई उल्लंघन न करे, उसवक्त सर्वत्र शांति फैलाई, सबके चित्त स्वस्थ हुए, सूरिजीमहाराजका सर्वत्र यश डंका बजा, शासनकी परमोन्नति हुई. पाटणमें

और सर्व राज्यमें गुरुमहाराजका और राजाका पुनर्जन्म मानकर महान् उत्सव किये गये, घरोंमें धवल मंगल गाये गये, सर्वत्र चैत्योंमें अठाई उत्सव कराये गये, याचकोंको यथेच्छ दान दिये गये, सुखे सुखे राजा राज्य तथा गुरुमहाराज धर्म साम्राज्य पालने लगे.

एक समय सूरिजी महाराजने राजाकों ऐसा उपदेश दिया कि, निर्मल कलादि गुणयुक्त दीर्घदर्शी विचारशील पुरुषोंको योग्य है कि अनंत भवों में भी दुर्लभ ऐसे मनुष्यजन्मकों पाकर चार पुरुषार्थोंमें उत्कृष्ट पुरुपार्थ मोक्षका साधन करें मोक्षकी निर्पेक्षतासें सेवन किये हुए अर्थ कामभी किंपाक फलके समान थोडे अरसेंमें दुरंत फलके देनेवाले हैं, सर्व सुखोंसें मोक्षके सुख उत्कृष्ट है, देवता नारकी तिर्यंच विषयासक्त दुःखी और विवेक विकल होनेसें मोक्षका साधन मनुष्य भवमेंही होसक्ता है, मोक्षार्थीको सर्वदा सर्वादरसें देवगुरुकी

यह व्यवहार बहुत अरसेतक रहा नवमें श्री "सुविधिनाथ" और १० में "शीतलनाथ" तीर्थंकरके अंतरमें वोह ब्राह्मण मिथ्या दृष्टि होगये, पीछे श्रीशीतलनाथ स्वामी जब तीर्थंकरहुए तो उन्होने ऐसा फरमाया कि परस्त्री आसक्त आरंभ परिग्रहमें रक्त ब्राह्मण नहीं कहे जाते "ब्रह्मचर्येण ब्राह्मणः" प्रभुके इस सत्योपदेशसें कल्पित ब्राह्मणोंका मान घटने लगा, बहुतसें भव्यात्मा सुधर गये कितनेक दीर्घसंसारी जिद्दी थे सो नहीं सुधरे, और जैनधर्म पर द्वेष रखने लगे, उन्हीके वंशमें आज के द्वेषी ब्राह्मण भी परम-पवित्र जैनधर्मपर ईर्षाबुद्धि रखकर अपने अमूल्य मनुष्य जन्मरूप कल्पतरुकों द्वेषाग्निसें जलाते हैं !!!॥

(कलिकाल सर्वज्ञ श्रीहेमचंद्र सूरिजीका अंत्यसमय)

काल यह बडा विकराल है, इसने चक्रवर्ति वासुदेव इंद्र उपेंद्र सर्वकों स्वाधीन किया है, आयुःदलोंके पूरे होनेपर अनेक धर्मकृत्य करके कुमारपालके

परम विश्वासपात्र "अंबड" (आम्रभट) और "वाहर" भी इसी निर्दयके पंजेमें आगये !!! समय खोटा आनेवाला था इसवास्ते श्रीहेमचंद्रसूरिजीके समुदायमें परस्पर विरोधके अंकुरोंका प्रादुर्भाव हुआ—परस्पर द्वेष और ईर्ष्याकी वृद्धि होने लगी—वैर वधने लगे एक तर्फ "रामचंद्र" और "गुणचंद्र" का मंडल दूसरी तर्फ "वालचंद्र" का मंडल एक दूसरेके दोष देखनेमें तत्पर हुए, इस दशाकों देख राजाने गुरुमहाराजकों पूछा साहेब ! आपकी और मेरी अवस्था वृद्ध हुई है इसवास्ते आचार्यपद्वी और राज्यगादीवास्ते कुछ विचार करना उचित है, राज्यके पात्र इसवक्त "प्रतापमल्ल" और 'अजयपाल' दो कुमार हैं इनमेंसें जिसकों आप फरमाओ राज्यगादी सुपुरद करूं, गुरुमहाराजने कहा राजन् ! अजयपाल दुराशयि और असत्यवादी शासन प्रत्यनीक है इसवास्ते इसकों राज्य देना दूधसें सर्पकों पुष्ट करना है "प्रतापमल्ल" राज्यके लायक मालूम पडता है, क्युं कि

यह धर्मी और लोकप्रिय है, इसबातकों बालचंद्रने सुना और दूसरे दिन अजयपालके पास जाकर सब हाल सुनाया, सुनकर अजयपाल–राजा और गुरुमहाराजपर अत्यंत द्वेष रखने लगा, इस प्रकार परस्पर खटपट चल रही थी इतनेमें 'श्रीहेमचंद्र' महाराजका (८४) वर्षका आयुः प्रायः पूर्ण हुआ उन्होंने राजा आदि सकल संघकों बुलाया और अपना अंत्यसमय कह बताया, राजाकों वज्रके प्रहार समान यह वाक्य दुःखदाई हुआ, गुरुमहाराजने कहा राजन् क्युं दुःख मानते हो? तुमारा आयुः भी अब छ मास बाकी है, इसवास्ते धर्ममें सावधान रहो, जहां संयोग है वहां अवश्य वियोग है यह कहकर १० प्रकारकी आराधनापूर्वक गुरुमहाराज स्वर्गारोहणकों तयार हुए, राजा गुरुमहाराजके चरणोंमे शिर रखकर आंखोसें आंसु की धारा बरसाता हुआ गद् गद् शब्दसें रुद्धकंठ होकर बोला—हे भगवन्! राज्यादिककी प्राप्ति मनुष्योंको अल्प प्रयाससें भवभवमें होसक्ती है

परंतु उभय लोकमें सर्व समीहित सिद्धि करनेमें कल्पलताके समान गुरुचरणोंकी सेवा मिलनी मुश्किल है,—हे प्रभो! आप मेरे केवल धर्मदाताही नहीं परंतु प्राणोंके भी दाता हैं! मैं आपके इस ऋणसें कैसे मुक्त होऊंगा? आपके सिवाय मुझे धर्मक्रिया कौन शिखावेगा? अगाधमोहसागरमें डूबते हुए मुझे हस्तालंबनभूत कौन होगा? इस प्रकारके राजाके करुणामय विलापसें सूरिजी महाराजका हृदय भर आया तो भी उन्होने धीरज रखकर अपने पगोंमें पडे हुए राजाकों मुशकिलसें उठाया और स्नेहसें कहा 'राजन्! तुमने आजतक शुद्ध अंतःकरणसें मेरी सेवा की है इसवास्ते स्वर्गमें गये बादभी मैं तुमारे हृदयसें दूर न होउंगा'।

और तुमने शुद्धाध्यवसायसें श्रीजिनेश्वर देवके धर्मकी आराधना की है इसवास्ते तुमकों मोक्षसुख भी बहुत निकट है, मेरे कहनेसें तुमने पृथ्वीमें सर्वज्ञ

शासनकी प्रवृत्ति कराई है, इसवास्ते मेरे ऋणसें तुम सर्वथा मुक्त हो!!

इत्यादि गुरुमहाराजके वचनोसें राजाके मनमें जरा हिम्मत आई और मंत्रिवर्गको गुरुमहाराजके निर्वाणमहोत्सव करनेकी आज्ञा की.

सूरिजीमहाराज अपने मनमें निरंजन निराकार सहजानंदी परमात्मा का ध्यान करनेमें एकतान हुए आत्मासें भिन्न सर्व वस्तुओंका त्याग कर स्वात्मबोधसें लीन हुए.

उन्होने इस तरहकी भावनामें मनको जोडा "हे आत्मन्! तुंही देव हैं, तुं ही त्रिभुवनवर्ती पदार्थोंको प्रकाश करनेमें दीपक है, तुंही ब्रह्मज्योतिः है, तुंही सर्वभावोंका कर्ता और भोक्ता है, तुंही कर्मका बंधक हैं, तुंही मोचक हैं, तुंही जगत्में गमन करता है, तुंही स्थिर रहता है तेरा स्वरूप अविनाशी ज्ञान दर्शन चारित्र है, पुद्गलभाव तुझसें भिन्न है, इसवास्ते विभावदशाको छोडकर स्वभावदशामें

रमण कर जिससें तेरा स्वरूप निर्मल होकर सिद्धि-सौधका वासी होवे! इस तरहकी भावनासें अवसान-समय सूरीश्वर महाराजने दशमें द्वारसें प्राणमोक्ष किया, श्रीहेमचंद्रसूरिका जन्म संवत् ११४५ कार्तिक-पूर्णमासीके दिन हुआ था, दीक्षा ११५४ में, आचार्यपद्वी ११६६ में, और निर्वाण १२२९ में हुआ था पीछे बावनाचंदन आदिसें सूरिजीके शरीरका संस्कार किया गया, यह भस्म पवित्र है ऐसा समझकर—और कहकर राजाने तिलक किया सामंतादिने भी वैसाही किया नगर देशके सर्व लोकोंने भी वैसाही किया "यथा राजा तथा प्रजा"—भस्म खतम हो जानेपर वहांकि मट्टी खोदकर लोग माथे लगाने और घरोंमें लेजाने लगे, वहां जो खाडा पडगया था, उसका नाम "हेमखाडा" प्रसिद्ध हुआ, अब गुरु महाराजके वियोगसें राजा अत्यंत शोकमें पडा, आंखोसें आंसु सुकाते नहीं, उसने राजचिन्होंकों दुर्गतिके चिन्ह जाणकर छोड दिया, राज्य व्यापार संसार वृद्धिका

हेतु समझकर सर्वथा वर्ज दिया, भोगोंकों रोग समझ कर राजाने नाटकादि देखनेका भी त्याग किया, राजाके चित्तकों जरा स्थिर करने वास्ते एकसमय एक पंडितने आकर एक सूक्त कहा—

ध्वान्तं ध्वस्तं समस्तं विरहविगमनं चक्रवाकेषु चक्रे,
संकोचं मोचितं द्राकू किल कमलवनं धाम लुप्तं ग्रहाणां।
प्राप्ता पूजा जनेभ्यस्तदनु च निखिलायेन भुक्ता दिनश्रीः
संप्रत्यस्तं गतोऽसौ हतविधिवशतः शोचनीयो न भानुः१

यह सुनकर राजाका चित्त कुछ स्वस्थ हुआ, और गुरुमहाराजके गुणोंकों वारंवार याद लाकर सर्व लोगोंके समक्ष ऐसी उद्घोषणा करने लगा हे श्रीहेमचंद्रसूरिराज ! यदि मैं प्रतिदिन आपके चरणोंकों कामधेनुके दूधसें पखालुं (धोउं) और बावनाचंदनसें लिप्त करुं, कमल और मोतियों सें पूजुं, तोभी आपके उपकारका बदला नहीं दे सक्ता, जगतमें ऐसी प्रथा है की, 'राज्यका फल नरक'

परंतु आप कृपालुने नरक यह अक्षर मेरे ललाट-पट्टसेंही दूर करदिये हैं।

संसारसमुद्रमें डूबते हुए मुझे आप पूरेपूरे जहाज हुए हैं!!! इस प्रकार गुरुमहाराजके विरहसें आतुर राजाने अपने भाणेज 'प्रतापमल्ल' कों राजगादी देनेकी तजवीज करी, यह बात कोई छिद्रान्वेपी द्वारा 'अजयपाल' के पास गई.

दुष्ट अजयपालने अपने कोई नौकरके हाथसें राजाकों जहर खिला दिया! राजाने शरीरकी हालतकों देखकर निश्चय करलिया कि, 'अजयपालने मुझे जहर दिलाया है'.

अपने विश्वासपात्र मनुष्योंकों कहकर जहर उतारनेवाली छीप (सिप्पी) जो कि राजाके स्वाधीन थी मंगवाई, अजयपालने वोह छीप पहले ही स्वाधीन करली हुई थी, उसके न मिलनेसें संपूर्ण राजमंडल घबराया, इस समय कुमारपालकी अंत्यावस्थाकों देखकर कोई कवि बोला—

कृतकृत्योऽसि भूपाल! कलिकालेपि भूतले।
आमंत्रयति तेन त्वां, विधिः स्वर्गे यथाविधि ॥ १ ॥

राजाने उसे १ लाख रुपया इनाम दिलाया, और 'अजयपाल' के दुष्टाशयको जानकर कहा—मैंने अर्थी लोगोंको स्वशक्ति अनुसार दान दिया है, वादमें दुर्वादियोंको वारंवार पराजित किया है, यथाशक्ति सर्वज्ञशासनकी सेवा बजाई है, अब आगे को जो कुछ विधाताकी मरजी होगी उसके वास्तेभी तयार हुं!!! यह कहकर राजर्षि कुमारपालने १० प्रकारकी आराधनापूर्वक अनशन अंगीकार किया, हृदयमें सर्वज्ञदेव श्रीजिनेश्वर, कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेम-चंद्रगुरु, और श्रीसर्वज्ञकथित धर्म इनका स्मर्ण करते हुए परमार्हत कुमारपालने विक्रमसंवत् १२३० में राज्य गादीके ३० वर्ष ९ मास सत्तावीस दिन भोगकर काल किया। इसपरमार्हतने १४०० प्रासाद बनवाये ७२ सामंतोंपर अपनी आज्ञा चलाई १८ देशोंमें जीव दया पलाई १६००० जीर्णमंदिरोंका

उद्धार कराया १४४४ नये जिनचैत्योंपर कलश चढाये, ९८ लाख रु० उचित दानमें खर्च किया, ७ दफा तीर्थयात्रा करी पहली यात्रामें ९ लाख रु० कीमतके ९ रत्नोंसें प्रभुकी पूजा की.

२१ ज्ञानभंडार लिखाए. अपुत्रियोंका धन जो कि प्रतिवर्ष ७२ लाख आसक्ता था छोड दिया, ९८ लाखरुपया उचित दानमें खरच कीया ७२ लाखरुपयेका कर श्रावकोंका माफ किया, गरीब श्रावकोंको सहायता वास्ते १ क्रोड रुपैया प्रतिवर्ष दिया—'परनारीसहोदर' (१) 'शरणागतवज्रपंजर' (२) 'विचारचतुर्मुख' (३) 'परमार्हत' (४) 'राजर्षि' (५) 'जीवदाता' (६) 'मेघवाहन' (७) इत्यादि अनेक विरुद धारण किये।

सप्त व्यसन अपने राज्यमेंसें निकाल दिये।

संघभक्ति, स्वधर्मी वात्सल्य, त्रिकालपूजा, उभयकाल आवश्यक, पर्वदिनोंमें पौषध, जिनशासनकी प्रभावना, दीनोंका उद्धार, शास्त्रश्रवण, गुरुसेवा,

इत्यादि अनेक पुन्यकार्य करके अपने आत्माकों सद्‌गतिभाजन बनाया

कुमारपालभूपस्य, किमेकं वर्ण्यते क्षितौ ?।
जिनेंद्रधर्ममासाद्य, यो जगत्तन्मयं व्यधात् ॥ १ ॥

शिवमस्तु सर्वजगतः, परहितनिरता भवंतु भूतगणाः।
दोषाः प्रयांतु नाशं, सर्वत्र सुखी भवतु लोकः ॥ १ ॥



अथश्रीशत्रुञ्जयतीर्थद्वात्रिंशिका.

श्रीपुण्डरीकाचलमौलिमौलि–मुन्मीलिताऽनादिसमाधिलीनम्। शक्त्याऽल्पया पुष्कलया च भक्त्या, स्तुवे शिवेच्छः प्रथमं जिनेशम् ॥ १ ॥ क ते स्तुतिः ? कुण्ठितशक्रशक्तिः, क चाऽहमज्ञेषु धुरीणरेखः ? । स्तुतेर्मिषादेष जनः सुमेरु–मारोढुमुद्यच्छति पङ्गुकल्पः ॥ २ ॥ परं भवद्भक्तिभरेरितः स–न्नवं नवं कर्तुमहं यतिष्ये। अत्येति नेतः ! कियतीमपि क्ष्मां, यतः परप्रेरणयोपलोपि ॥ ३ ॥ विलीनमीनध्वजराजमान !, सत्केवलज्ञानविराजमान !। जय त्वमादीश ! जिनाभिजात !, निष्णातवजातस्तुत! नाभिजात ! ॥ ४ ॥ सुधाञ्जनं सज्जनलोचनेषु, मिथ्यादृशामक्षिषु धूमरेखा । यैरालुलोके विमलाचलोऽयं, पुण्यानि तान्येव चिरं जयन्तु ॥ ५ ॥ सुपर्वशैलादपि पर्वतोऽयं, स्वामिन्महीयानिति मे वितर्कः । नो चेदवापुः किमु मंक्षु मोक्षं, मुमुक्षवोऽमुष्य शिरोधिरूढ ? ॥६॥ ये ये विनिर्माय मनो विमाय–मायान्ति

ते तेऽत्र भवन्ति सन्तः। पुण्यश्रियः पात्रमतो म-
तोऽयं, त्वत्सानुमानक्षयपुण्यकोशः ॥ ७ ॥ स्पृष्टोऽपि
लोकैः शिरसि स्वपादै–र्दत्ते सुखं तात्त्विकमेव तेभ्यः।
संसर्गतस्ते शमिनो मुनीश!, क्षमाधरोऽभूच्चरितार्थ
एषः ॥ ८ ॥ भुवं प्रविष्टो नरकं पिधत्ते, पुनाति पृ-
थ्वीं विशदैः स्वपादैः। गिरिस्तवाऽयं गगनाग्रलग्नोऽ-
पवर्गमार्गं सुगमं करोति ॥ ९ ॥ अमुं महद्भ्योऽपि
महान्तमद्रिं, श्रयन्ति माहात्म्यधना जना ये। भवा-
ब्धिमस्ताघमदृश्यपारं, तरन्ति ते मंक्षु तदीश! चित्रम्
॥ १० ॥ सन्त्यत्र शैला बहवोऽयमेव, गिरिः परं सि-
द्धपदं प्रसिद्धः। के के ग्रहा व्योमनि न स्फुरन्ति,
सुधानिधानं विधुरेव किन्तु ॥ ११ ॥ आरोहतां
स्यादचलेऽत्र दूरे, नीचैर्गतिः स्वर्गशिवौ त्वदूरे। प्रत्य-
क्षमेतज्जगतोऽप्यतोऽन्यत्, प्रमाणमन्तर्गतभाव एव १२
श्रितास्त्रिलोकीपतिना त्वयाऽयं, शैलश्चलन्निर्झरबद्ध-
कक्षः। सन्नाह्वदन्तीव वलिष्ठदन्तो, दृष्टोऽपि भावा-
रिबलं भिनत्ति ॥ १३ ॥ विराजसेऽस्मिन्नचले विली-

न–स्त्वं सिद्धयोगीव युगादिदेव ! । सिद्धं रसं शान्त-मवाप्य यस्मा–ज्जायेत कल्याणधनो जनौघः ॥ १४ ॥ शिलोच्चयः शैलकुलेऽखिलेऽपि, युक्तं जिनाऽसौ वहते विभुत्वम् । नष्टापदऽष्टापदकान्तकान्ति–र्यदीयमौलौ मुकुटायसे त्वम् ॥ १५ ॥ चलाचला भूरिमलाविला च, रजोमयी दृष्टविचित्रमारा । क सुंदरी ? क्वाऽस्य दरी नगस्य, ? स्थिरा पवित्रा विरजा अहिंस्रा ॥१६॥ मेघेन मुक्तं तव शैलमौला–वधोयियासज्जलमस्तु वारि । अधित्यकायामिह निस्तरंगैः, श्रृंगैस्तु लेभे किमु कूटनाम ? ॥ १७ ॥ न यान्ति ये गोत्रममुं विहाय, विहायसस्सन्तु चिरायुषस्ते । किं तैर्नरैरऽप्यऽफलावतारै–र्नालोकि यैस्तीर्थमदोऽपदोपम् ॥१८॥ कर्पूरपारीभिरुताऽमृतांशो, रुग्भिः सुधावारिधिवीचिभिर्वा । पुण्याणुभिर्वा घटितेति चेतः, सन्देग्धि शुभ्रां तव वीक्ष्य मूर्तिम् ॥ १९ ॥ केचित्तवोपास्तिविधौ प्रमोदं, परे प्रमादं च दधत्यऽधन्याः । द्वयेऽपि ते कौशिकतां लभन्ते, स्वर्गे विनैनं गिरिमद्रिदुर्गे

॥ २० ॥ त्वं देव! तावद्रूपभाभिधानः, पङ्के निमग्नश्च जनो जिनाऽयम्। मामार्त्तमुद्धर्तुमतो यतस्व, स्वनामवामो हि किमुत्तमः स्यात्? ॥ २१ ॥ चिरादसंचारतरः शिवाऽध्वा, त्वया तथाऽद्याहि महोर्जितेन। प्रायस्खलन्ति स न बालवृद्धा, एकाकिनोऽप्यत्र यथा चरन्तः ॥ २२ ॥ भावारिभीत्या श्रितमुक्तिदुर्गे, वीरः कुले ते स मरीचिरेकः। कृत्वा पुरो यो भवभीतलोक-मादुःखमारं स्वयमार मोक्षम् ॥ २३ ॥ मोक्षं त्रिलोकीलतिकाशिरःस्थं, फलं सुधास्वादु जिघृक्षुरेनम्। निःश्रेणिकावद्भिरिमारुरोह, मोहादिगृध्रो धुनुते पुनर्मां ॥ २४ ॥ संसारकुण्डीचिरवासलग्न-पङ्कप्रलीनोर्ध्वगतिप्रयत्नः। कृपासरस्तावकपादपद्मे, चिखेलिषत्येष मदीयहंसः ॥ २५ ॥ पद्मासनासीनमदीनतोषं, कृपारसागारमरागरोपम्। भवन्तमालोक्य कदा मुदाऽह-मदाहदुःखं स्वमनः करिष्ये? ॥ २६ ॥ कदा कदाशामृगतृष्णिकाया-मसद्गसप्रार्थनया विषण्णः। त्वद्ध्यानमुद्यानमिवाधिगत्य,

नित्यं लयं चित्तमृगो गमी मे ? ॥२७॥ कदा त्वदा-
लोकनजप्रमोद–मेघस्विचक्षुःक्षरदश्रुनीरैः । निःशेपनि-
र्वापितदुःखदावः, सद्भाववल्लीं परिवर्धयेऽहम् ? ॥२८॥
असारसंसारविहाररीणौ, स्पृष्ट्वा कृतार्थौ तव तीर्थ-
मार्गम् । कदा क्रमावीश ! ममेतरेयां, भवभ्रमीणां
प्रकरिष्यतोऽन्तम् ॥२९॥ बालोऽहमाऽऽलोक्य चिराद्भ-
वन्तं, तातं निरातङ्कमतिः प्रसन्नम् । प्रियं प्रियं वस्तु
कदार्थयिष्ये, बलादपि प्रीतिविकस्वरास्यः ॥ ३० ॥
चित्ते पुरा याश्च न वीचयो मे–ऽभूवन्ननेकास्त्वयि वी-
क्षिते ताः । नाकासिकाद्विसयतः स्मरन्ति, स्वेनैव
तद्योग्यतया प्रसीद ॥ ३१ ॥

एवं सर्वसुपर्वसंहतियुतश्रीमन्महेन्द्रार्चित ! ।
श्रीशत्रुञ्जयशेखर ! प्रियकर ! श्रीमद्युगादीश्वर ! ॥
वाचो मार्गमुपेतया स्तुतिमिषाच्चेतःस्थभक्त्याऽनया ।
चेत्तुष्टोसि तदा सदा निजपदाभ्यर्णे स्थितिं देहि मे ३२

इति श्रीजयशेखरसूरिविरचिता श्रीशत्रुञ्जयतीर्थ-
स्तुतिगर्भिता द्वात्रिंशिका समाप्ता ॥

॥ अथ श्रीगिरनारतीर्थद्वात्रिंशिका ॥

शृङ्गारयन्तं गिरिमुज्जयन्तम्, पञ्चेषुचक्रम् धुतमुज्जयन्तम्। श्रीनेमिनं नौमि निरस्तमोहं, व्यपोहितुं भक्तिपरस्तमोऽहम् ॥ १ ॥ स्तुतं श्रुतज्ञैः समतोदधे! त्वां, स्तुवन्नविद्वानपि नाऽस्मि निन्द्यः। निम्बः स्फुटन्मासि मधौ विकासि–रसालसंशालिनि किं विगेयः? ॥ २ ॥ ममाद्य माद्यत्तमसां विनाशे, ज्ञाते च मोक्षाध्वनि सुप्रकाशे। श्रीउज्जयन्तोदयशैलशृङ्गे, त्वद्दर्शनेनाऽजनि सुप्रभातम् ॥ ३ ॥ नृपः समुद्रो विजयात् पयोधे–र्जातो जगन्नाथ! यथार्थनामा। लोकद्वयास्तोकसुखोपनेता, चिन्तामणिः प्रादुरभूर्यतस्त्वम् ॥ ४ ॥ आदृत्य सिंहासनमुग्रनाद–दुर्वादिदन्तीन्द्रनिराकरिष्णुम्। याऽजीजनत्त्वां महिला वलाढ्यं, चित्रं! शिवेति श्रुतिमाप सापि ॥ ५ ॥ ब्रह्मास्त्रनिर्नाशितभावशत्रोः, पुष्पायुधेनापि विडम्ब्यमानः। कृष्णः सतृष्णस्तव निर्जयाय, मृगो मृगारेरिव किं रराज? ॥ ६ ॥ स्वयं प्रपद्यापि विवाहकर्म, धर्म्मज्ञ यत्तत्र पराङ्मु-

खोऽभूः । तत्रैकहेतुः शिवलाभलोभो, लोभान्न वा कस्त्यजति प्रतिज्ञाम् ॥ ७ ॥ अदास्तदा निर्वृतिकारिकारा–निबद्धतिर्यक्षु यथा स्वचक्षुः । किं सारशक्ते ! परमोपरक्ते, भक्ते जनेऽस्मिन्न तथा ददासि ? ॥ ८ ॥ चेत्त्वं मुमुक्षुः किमुरीकृताह–मुरीकृता वा किमु नाथ ! मुक्ता ? । स्वयं नयज्ञोऽसि किमुच्यते ते ?, जीयाद्वचो भोजभुवस्त्वयीति ॥ ९ ॥ राजीमती मन्थरतावलस्वलक्ष्म स्त्रियां मार्ष्टुमिहोदियाय । किमन्यथा त्वत्प्रथमं जगाम, सा कामवीराभिभवाङ्ग्वान्तम् ॥ १० ॥ घनाघनाभे त्वयि पर्वतेऽत्र, वर्षत्यजस्रं वचनामृतेन । भव्या अभव्याः क्रमशो मयूर–मरालकेलीः कलयाम्बभूवुः ॥ ११ ॥ पपात पूरे पतितं यदीये, त्रिलोकमन्तर्भववार्द्धि तस्यां । कृष्णानुजः कृष्णतनुश्च कृष्णचित्रोभवस्त्वं प्रमदापगायाम् ॥ १२ ॥ भवन्मतेन्दोर्मम हृच्चकोरे, शमामृतं साधुहितं पिपासौ । अदभ्रविश्रोतसिकाभ्ररेखा, सैपान्तरुत्थाय करोति विभ्रम् ॥१३॥ नीतं फलाशां मम चारुचेतः–क्षेत्रे त्वदाज्ञा-

सृतसारणीभिः। कुतोप्युपेतो बत बोधिबीजम्, प्रमा-
दकोलः सकलं निहन्ति ॥१४॥ याऽसूत्रि सूत्रेण तवैव
पुण्य–शाला विशाला मम चित्तभूमौ। तामद्य भिन्दन्
क्रमबद्धमूलो, मोहप्ररोहः कथमेष रक्ष्यः? ॥ १५ ॥
भवाटवीतः शिववासमाशु–मुपक्रमन्तेऽत्र जना न के
के?। मिथ्यात्वरथ्यापरिवर्त्ततस्तु, ते दिग्विमूढा इव
हीं भ्रमन्ति ॥ १६ ॥ तुच्छेन्द्रियार्थैः कुवलीफलाभै-
र्विलोभ्य मां बालमनङ्गधूर्त्तः। त्वदेव देवाधिगतं
विवेक–रत्नं भृशं दुर्लभमाच्छिनत्ति ॥१७॥ समं सुमा-
स्त्रेण तवावियोगा, कदा जगन्मित्र बभूव मैत्री। स्थिति-
र्मदन्तःकरणेऽल्पकेऽपि, तवापि तस्यापि यदद्य जाता
॥ १८ ॥ युधि त्वया त्रासित एष कामो, मच्चित्त-
दुर्गं विवशो विवेश। तत्रापि वीरस्त्वमुपागतोऽसि,
तद्दूरय क्रूरममुं निगृह्य ॥ १९ ॥ अपायतः पासि
कथं त्रिलोक–मोकस्तवैवातिकृशं भृशं सः। मच्चेत
एतत्त्वयि मध्यगेपि, यत्साम्प्रतं लुम्पति कामचौरः
॥ २० ॥ यद्वा स्वसद्मापि समत्वसार!, नारिक्षितं

रक्षितुमुद्यमस्ते । अयं शमः कस्य न विस्मयाय, पुनः प्रभो ! न प्रभुधर्म एषः ॥ २१ ॥ सर्वस्वनाथ ! स्वयमेव चेत–श्चेत्क्रन्तसीदं मम तन्न खेदः । रागादिभिर्वैरिभिरर्द्यमान–मुपेक्षसे यत्तदलं दुनोति ॥ २२ ॥ येन त्वदाज्ञा बहुशो व्यलोपि, भ्रमेण सर्वत्र तया भियेव । स एष चेतश्चरटो नियंत्र्य, युक्तं त्वयावासि निजांघ्रिमूले ॥ २३ ॥ शान्ताभिधं सिद्धरसं तवेश, दृष्टावहं साधयितुं समीहे । पञ्चेन्द्रियव्यन्तरका अकाले, जिहीर्षवस्तं भवतैव वार्याः ॥ २४ ॥ भवोदधौ तावकतत्वमुक्ता, व्यक्ता जिघृक्षामि सुदुर्विधोहम् । दुरायतिर्धावति किन्तु हन्तु–मज्ञाननक्रः क्रियते किमीश ! ॥ २५ ॥ शमद्रुमो मे भवदुक्तदृत्या, प्रपालितः पुण्यफलान्यदास्यत् । न चोर्द्धशोपं तमशोपयिष्य–न्निविश्य चेत्कोपकपोतपोतः ॥ २६ ॥ त्वदागमाम्भोदरसैरशेषां, तृष्णामहं चातकवच्छिनझि । यावद्भवौ तावदखर्वगर्व–पूर्वानिलो मत्प्रमदासहिष्णुः ॥ २७ ॥ संसारकुग्राममपास्य मुक्ति–पुर्यै प्रतिष्ठेऽ

धिगतांत्रिरतः । यदा तदाभिज्ञ ! मनक्ति मायो-रगी पुरोगा शकुनानुकूल्यम् ॥ २८ ॥ निघ्नन्मनोरङ्कमवार्यवीर्य-स्तुष्टे त्वयि द्वीपितुलामवापम् । परं चरन्तं शिववर्त्मना मां, लोभानलो भापयति प्रदीप्तः ॥२९॥ मां यानि यान्तं नरकादिघोर-स्थानेष्वपि प्रागनुजग्मुरीश ! । कर्म्माणि तानि त्वयि वीक्षितेऽपि, नोज्झन्ति हेतुश्चिरसंस्तवोऽत्र ॥ ३० ॥ सम्भूय भावारिभिरेवमर्द्य-मानं स्वयं शाश्वतसौख्यलीनः । उपेक्षसे मां यदि तद्वराकी, निराश्रया नाथ ! दया क यातु ? ॥ ३१ ॥ उत्सार्य मात्सर्यमदादिवैरि-व्रातं निरातङ्कतया कथञ्चित् । विश्वेश ! विश्वासुखपीडितोऽहं, प्राप्तोऽसि ते दृष्टिमतः प्रसीद ॥ ३२ ॥ श्रीमद्रैवतदवत ! स्तुतिमिमां निर्माय नेमीश ! ते, सूरिः श्रीजयशेखरः स्थिरधिया यत्पुण्यमासादयत् । तेन स्तेनतुलान्तरारिनिवहाव्यालुप्तविद्याधनो, धेयात्त्वन्मतपूततत्वपदवीनित्याध्वगानां धुरम् ॥ ३३ ॥

इति श्रीजयशेखरसूरिकृता श्रीगिरनारगिरि-
मण्डनश्रीनेमिनाथस्तुतिः ।

॥ अथ श्रीमहावीरजिनस्तुतिः ॥

अकम्पसम्पल्लवलीवसन्तं, निरीहचित्ते विमले वसन्तम् । कामं निकामं विरसं हसन्तं, नुवामि वीरं महसोल्लसन्तम् ॥ १ ॥ आमूलविच्छिन्नभवावगाह !, संविचिवल्लीवरवारिवाह ! । जयामयातङ्ककलङ्कपङ्क–निरासनीरासमवीर वीर ! ॥ २ ॥ अपारसंसारविहारखिन्न–च्छायातरुच्छायममोघसेवम् । सेवामहे सिद्धिसमागमाय, तवागमं जीव निकायबंधो ! ॥ ३ ॥ महोदयं मोहतमीसमुत्थं, तमोभरं भूरितमं निहन्तुम् । निरन्तरायं तरणिं भवन्तं, के केऽभिसन्धिं न धरन्ति नन्तुम् ॥ ४ ॥ महारसा देवगणात्तसेवा, तच्चित्तकामं परिपूरयन्ती । अङ्गावलिं चारुरुचिं वहन्ती, वाणी विभो कामगवी तवेह ॥ ५ ॥ अंहोनिरासं करुणानिवासं, ससंवरं साररमाविलासम् । आयासदूरं महिमोरुपूरं, सन्देहमन्देहसमूहसूरम् ॥ ६ ॥ असंपरायं नवहेमकायं, विभिन्नभावारिबलं विमायम् । महोमहोल्लासभवं भवन्तं, सन्तो

नमन्तो मुदमावहन्ति ॥७॥ [युग्मम्] आभीलतालूर-
धरे दुरीहा-वेलाविलासे जलमन्दिरे च। असार-
नारीजलचारिजीव-समाकुले रागतरङ्गसङ्गे ॥ ८ ॥
तारं गभीरे कलिकालचण्ड-समीरसंघट्टसमुद्धरे च। नि-
स्सीमभीमे भवसागरेऽहं, तरीसमं ते चरणं वरामि ॥९॥
[युग्मम्] वाणीरसं सारतरं रसन्तो, हे वीर! धाराधर-
बन्धुरं ते। संसारिसारङ्गविहङ्गपूगा, अखण्डमानन्द-
भरं धरन्ति ॥ १० ॥ कल्लोललोला कमला सुवामा,
चामावहा वाहचलं बलं च। चिन्तानिमित्तं परिवार-
मेलो, देहं दुरन्तामयगेहमेव ॥ ११ ॥ भुजङ्गभोगा
नरदेवभोगा, भारो भरेणाभरणावलीयम्। सारा परं
ते चरणारविन्द-सानन्दसेवा भुवि देवदेव! ॥ १२ ॥
[युग्मम्] रे दम्भ! संरम्भमिमं विमुञ्चा-खिलं बलं
संहर सम्वरारे! । हे मोह! ते को महिमा सन्निद्धो, देवो
ममायं किल वीरनामा ॥१३॥ सलीलहासालयहाव-
भाव-विलासहेलारसमंथरासु । अकुण्ठवाणीकलकण्ठ
कण्ठ-रोलम्बजायाजयलालसासु ॥ १४ ॥ अमन्द-

मन्दारमरन्दविन्दु–मत्तालिझङ्काररवाकुलासु । आपीडताडंकललाममञ्जुमञ्जीरहारावलिभासुरासु ॥ १५ ॥ रम्भोरुदण्डासु सरोजनाल–सोमाल-बाहाचलकङ्कणासु । विम्बीफलाभाधरपल्लवासु, कपोलपालीकलकुण्डलासु ॥ १६ ॥ विभावरीवल्लभभित्तिभाल–विलोलकालच्छविकुन्तलासु । अभङ्गुराडम्बरपञ्चबाण–तूणीरधम्मिल्लमनोरमासु ॥ १७ ॥ सम्पन्नराढाभरमारदारा–हङ्कारसंहारपरायणासु । आसीरहो सङ्गमदेवमाया–सिद्धासु रामासु विभो ! न रागी [कुलकम्] ॥ १८ ॥ नरा महासाहसबद्धसन्धा, विधाय बाढं रणमन्तरङ्गम् । इमं च देवं सबलं सहायं, पराजयन्ते सहसाऽरिवृन्दम् ॥ १९ ॥ विसारिवासे सुगुणे विपङ्के, पङ्केरुहाभे चरणे चिरं ते । वन्दारुदेवासुरभूमिपाला, मरालमालाकरणीभवन्ति ॥ २० ॥ रङ्गत्तुरङ्गे करवालकुन्त–च्छुरीकराले बहलेभमाले । संनद्धवीरे बलिबद्धबाणा–सारेण सारे समरे समारे ॥ २१ ॥ दावे च कीलाभयभीरुभूरि–कुरङ्गचाले

वहुदत्तदाहे। धूमोदयेच्छन्ननभोविभागे, संहारकाला-
नलसंनिकासे ॥२२॥ अवारपारे च सुदूरकूले, कूजन्तु
खेलाचलवारिपूरे । वेलाचलाच्छिन्नतरङ्गरङ्गे,
निरन्तराले वहुसिन्धुसङ्गे ॥ २३ ॥ सफालसिंहो-
रगरोगनाग—कुकालवेतालदरे च गाढे। धीरा धरन्तो
विभुवीरनाम, भवे न पीडाभिभवं लभन्ते ॥२४॥
[कलापकम्] विहाय वीरं गिरिमेरुधीरं, न मे परे
देवगणे समीहा । विना रसालं गुरुसालसालं,
नालं निकुञ्जम्पिकचित्तहारि ॥ २५ ॥ अञ्चन्ति
वुद्धा अमुमेव देवं, भावारिभीवारनिवारणाय । को
नाम भूधामतमोविकार—धिक्कारकारी रविमन्तरेण !
॥ २६ ॥ अहो न होमो न सुरापगा वा, पञ्चानली
दण्डकमण्डलू वा। अलं परं सिद्धिपुरं तु दातुं,
नीरागवीरागमसङ्गमोऽयम् ॥ २७ ॥ हहा निराल-
म्बमपारमोह—जंवालजाले वहुले दयालो !। इमं निजं
किङ्करमेव देव !, मज्जन्तमुद्धेहि विलम्वसे किम् ?
॥ २८ ॥ हे वीरकण्ठीरव ! मोहमत्त-करेणुमल्लं घन-

घोररावम् । उद्दामसुत्तुङ्गमुदारमङ्गि-भयावहं संहर मे सहेलम् ॥२९॥ नीरोग! नीरङ्ग! निरन्तरङ्गा-रिभङ्ग! निस्सङ्ग! गुणालिचङ्ग!। सदा सदाचारधुराधुरीण! संवेगबुद्धिं मम देव! देहि ॥ ३० ॥ कामो न कामे न चिरं रिरंसा, महे महेलासु ममावहेला। विहंगमोहं समयद्रुमे ते, भवामि मे केवलमेवमीहा ॥ ३१ ॥ इत्येवं समसंस्कृतस्तवमहं निर्माय निर्मायया, भक्त्या श्रीजयशेखरस्तव विभो! यत्पुण्यमासादयम् । तेन त्वच्चरणारविंदयुगले लीनं मनो मामकं, भूयाज्जन्मनि जन्मनि भ्रमरवत्पात्रं ममोदश्रियः ॥ ३२ ॥

इति श्रीजयशेखरसूरिकृता महावीरजिनस्तुतिः।

